गोपनीय/अप्रकाशित

भारत का विधि आयोग

विदेशी विवाह-विच्छेदों की मान्यता

पर

पैंसठवीं रिपोर्ट

अप्रैल, 1976

गोपनीय/अप्रकाशित

भारत का विधि आयोग

सत्यमेव जयते

विदेशी विवाह-विच्छेदों की मान्यता

पर

पैंसठवीं रिपोर्ट

अप्रैल, 1976

गोपनीय/अप्रकाशित

पी० बी० गजेन्द्रगडकर

अर्ध-शा सं० फा० 2(5)/75 वि-आ
ए० विंग, 7वीं तल,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली, दिनांक 5 अप्रैल, 1976

प्रिय मंत्री महोदय,

मुझे इस पत्र के साथ "विदेशी विवाह-विच्छेदों" की मान्यता के विषय पर विधि आयोग की पैंसठवीं रिपोर्ट भेजते हुए अत्यंत हर्ष हो रहा है।

आपको ध्यान होगा कि आपने 13 मार्च, 1975 को जो पत्र मुझे लिखा था उसमें आयोग का ध्यान उच्चतम न्यायालय द्वारा श्रीमती सत्या बनाम तेजा सिंह [ए० आई० आर० 1975, एस० सी० 105; (1975) 1 उम० नि० प० 894] में किए गए कतिपय संप्रेक्षणों की ओर आकर्षित किया था और यह सुझाव दिया था कि आयोग को इस विषय पर विचार करना चाहिए और इस संबंध में सरकार को अपनी रिपोर्ट देनी चाहिए।

जैसी कि आयोग की सामान्य पद्धति रही है, उसने पहले इस विषय का प्रारंभिक अध्ययन किया और रिपोर्ट का एक प्रारूप तैयार किया। तत्पश्चात् आयोग में, रिपोर्ट के उस प्रारूप पर विचार-विमर्श के पश्चात् उसका पुनरीक्षण किया गया तथा रिपोर्ट के एक पुनरीक्षित प्रारूप पर पुनः विचार-विमर्श किया गया और उसे अब अंतिम रूप दे दिया गया है।

जब से आयोग की स्थापना हुई है तब से यह उसकी पैंसठवीं रिपोर्ट है। सितम्बर, 1971 में आयोग का पुनर्गठन किए जाने के पश्चात् उसने सरकार को 21 रिपोर्टें (सं० 45 से 65 तक) भेजी हैं जिसमें यह रिपोर्ट भी सम्मिलित है। सितम्बर, 1974 में वर्तमान आयोग का पुनर्गठन होने के पश्चात् उसने पांच रिपोर्टें भेजी हैं जिनमें यह रिपोर्ट भी सम्मिलित है।

यहां इस बात का उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा कि वर्तमान रिपोर्ट की विषय-वस्तु का स्वरूप, आयोग द्वारा अब तक भेजी गई अन्य रिपोर्टों की विषय-वस्तु से, सर्वथा भिन्न है।

विधि भेद के कारण प्रायः नाजुक और पेचीदा प्रश्न उठ खड़े होते हैं तथा विदेशी विवाह विषयक न्याय-निर्णयों की मान्यता का विषय तो विशेष रूप से नाजुक और पेचीदा है।

प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के हमारे नियम अभी तक संहिताबद्ध नहीं हुए हैं और इस क्षेत्र में, विशेष रूप से गार्हस्थिक सम्बन्धों की बाबत, तो ऐसे कम ही कानून उपबन्ध हैं जो प्रत्यक्ष रूप से सुसंगत हों। यह विधि तत्वतः न्यायाधीश विरचित विधि है तो भी इस विषय पर भारत में, न्यायालयों के अधिक न्यायिक विनिश्चय उपलब्ध नहीं है।

इस विषय के ऐसे स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, जिस पर न्यायिक विनिश्चयों से बहुत सहायता प्राप्त नहीं होती है, आयोग के लिए यह आवश्यक था कि वह तुलनात्मक सामग्री का गहराई से अध्ययन करें, ताकि इस समस्या के विभिन्न पहलुओं को समुचित रूप से जांचा जा सके और संतोषप्रद रीति से सिफारिशें तैयार की जा सकें। इसके अतिरिक्त, इस समस्या पर विचार-विमर्श करते समय, आयोग ने यह भी अनुभव किया कि सुसंगत कानूनों के निर्वचन संबंधी कतिपय कठिन प्रश्नों का भी समाधान करना होगा, तथा आयोग ने इस कार्य को सम्पन्न करने का यथाशक्ति प्रयास किया है।

रिपोर्ट का प्रारूप तैयार करते समय, आयोग ने विधि के विभिन्न नियमों के ऐतिहासिक विकास पर भी विचार किया है और जिन तथ्यों की परीक्षा की गई है उनके सम्बन्ध में उनकी सुसंगति की भी चर्चा की है। रिपोर्ट में, अंतिम रूप से जो सिफारिशें की गई हैं और इस समस्या का जो सैद्धान्तिक परीक्षण किया गया है, वे अपनी पूर्णतया का स्वयं प्रमाण हैं।

मैं यह उल्लेख करना चाहूंगा कि यह सुझाव देने में कि विवाह-विच्छेद संबंधी विदेशी डिक्रियों को मान्यता दी जाने के प्रश्न पर विचार करते समय हमारे न्यायालयों को अपने निर्णय केवल अधिवास के प्रश्न पर ही आधारित नहीं करने चाहिएं, अपितु आभ्यासिक निवास और राष्ट्रिकता को भी आधार बनाना चाहिए। रिपोर्ट में, विवाह संबंधी कार्यवाहियों को निबटाने में विदेशी न्यायालयों द्वारा पारित आनुषंगिक आदेशों से संबंधित समस्या पर भी विचार किया गया है और इस विषय में आयोग का निष्कर्ष यह है कि ऐसे आनुषंगिक आदेश हमारे न्यायालयों द्वारा आबद्धकर नहीं माने जाने चाहिएं, भले ही विवाह-विच्छेद संबंधी विदेशी डिक्रियों को मान्यता दी गई हो। इन आनुषंगिक आदेशों का संबंध संतान की अभिरक्षा और अन्य संबंधित प्रश्नों से है और हमारी राय में, न्यायिक दृष्टि से ऐसे आदेशों को आबद्धकर मानना अविवेकपूर्ण होगा।

इस रिपोर्ट को भेजते समय मैं यह सुझाव भी देना चाहूंगा कि जब यह रिपोर्ट छप जाए, तब इसकी प्रतियां भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों के विधिसंकायों को, विभिन्न राज्यों की विधिज्ञ परिषदों को, भारत की विधिज्ञ परिषद् (बार काऊन्सिल) को तथा उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों को भी भेजना उपयोगी होगा। मैं यह सुझाव इसलिए दे रहा हूं क्योंकि रिपोर्ट में ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर विचार किया गया है जिसके संबंध में कोई भी कानून उपलब्ध नहीं है और इस विषय से संबंधित सामग्री विभिन्न स्रोतों से एकत्र करनी पड़ी है। मुझे आशा है कि इस देश के शिक्षण संस्थानों को यह रिपोर्ट रुचिकर, ज्ञानवर्धक और मार्गदर्शक सिद्ध होगी।

वास्तव में, यदि आप सहमत हों तो मेरा यह सुझाव आयोग द्वारा तयार की गई सभी रिपोर्टों को लागू होना चाहिए, क्योंकि यदि हमारी रिपोर्टें, छपने के पश्चात् संबंधित शैक्षिक और वृत्तिक संस्थाओं में भेजी जाएं तो उन विषयों पर, जिन पर आयोग ने विचार किया है, और आगे विचार-विमर्श करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा, और उससे आयोग द्वारा संबंधित रिपोर्टों में की गई सुसंगत सिफारिशों पर सरकार को अपने निर्णय लेने में भी सहायता मिलेगी।

सादर,

भवदीय

हस्ता०/

(पी० बी० गजेन्द्रगडकर)

माननीय श्री एच० आर० गोखले,
विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली, 110001

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
1.	रिपोर्ट की परिधि	1
2.	मान्यता के विषय	14
3.	न्यायालयों द्वारा लागू की गई विधि	23
4.	विदेशी निर्णयों की मान्यता के बारे में भारतीय विधि	37
5.	भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम से भिन्न अधिनियमितियों के अधीन अधिकारिता के बारे में भारतीय विधि	45
6.	भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन अधिकारिता	48
7.	मान्यता के बारे में इंग्लैंड का कामन लॉ	53
8.	न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद	57
9.	हेग कन्वेंशन	66
10.	मान्यता के बारे में 1971 का इंग्लैंड का ऐक्ट	69
11.	अधिकारिता के बारे में इंग्लैण्ड की विधि और 1973 का ऐक्ट	78
12.	परस्परता	82
13.	मान्यता के लिए विद्यमान आधारों के बारे में सिफारिशें	86
14.	मान्यता के नए आधारों के बारे में सिफारिशें	87
15.	पत्नी का अधिकार और राष्ट्रिकता	97
16.	मान्यता के बारे में अपवाद--सूचना और अवसर	101
17.	लोक नीति	104
18.	कपट	113
19.	आनुषंगिक आदेश	119
20.	अभिरक्षा के लिए आदेश—विवाह विषयक न्यायालय द्वारा फेरफार	129
21.	सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 और साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 का उपान्तरण	137
22.	सिफारिशें	138
	परिशिष्ट-1	139
	परिशिष्ट-2	143

अध्याय 1

रिपोर्ट की परिधि

I. प्रारम्भिक

प्रारम्भिक ।

1.1 इस रिपोर्ट में, विदेशों में अभिप्राप्त विवाह-विच्छेदों और न्यायिक पृथक्करणों को भारतीय न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जाने के प्रश्न पर चर्चा की गई है। विधि आयोग ने इस विषय को, संघ सरकार[1] द्वारा किए गए निदेश पर ग्रहण किया है । रिपोर्ट की परिधि क्या होगी इस बात को बाद में स्पष्ट किया जाएगा[2]।

अपनाई गई प्रक्रिया।

1.2 सरकार द्वारा किए गए निर्देश की प्राप्ति पर, इस विषय की बाबत एक प्रारूप रिपोर्ट तैयार की गई थी और उस पर आयोग के अधिवेशनों में विचार-विमर्श किया गया था। चूंकि आयोग से यह कहा गया था[3] कि सरकार चाहती है कि आयोग की सलाह शीघ्र ही प्रदान की जाए, अतः यह संभव नहीं हो पाया है कि हितबद्ध व्यक्तियों और निकायों के विचार या राय आमंत्रित करने के लिए इस विषय को जनता के समक्ष जैसी कि आयोग की प्रायिक प्रक्रिया है रखा जाए।

रिपोर्ट किसी विशिष्ट समुदाय के व्यक्तियों तक सीमित नहीं है ।

1.3 प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए कि यह रिपोर्ट किसी विशिष्ट समुदाय के व्यक्तियों द्वारा अभिप्राप्त विवाह-विच्छेदों या न्यायिक पृथक्करणों तक सीमित नहीं है। यद्यपि सत्या के मामले[4] में, जिसके प्रति निर्देश सरकार[5] से प्राप्त पत्र में किया गया है, उच्चतम न्यायालय का निर्णय हिन्दुओं के बीच विवाह से संबंधित है तदपि मूल वैधिक स्वरूप में मान्यता के प्रश्न से यह अपेक्षित है कि इस पर सभी समुदायों के व्यक्तियों की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए। यह स्थिति निम्नलिखित संप्रेक्षणों से स्पष्ट हो जाएगी जो उच्चतम न्यायालय ने इस प्रश्न की प्रकृति और परिधि के बारे में किए हैं:—

उच्च न्यायालय ने विचारार्थ प्रश्न इस प्रकार विरचित किया :

"क्या इस देश में विधिवत् सम्पन्न किसी हिन्दू विवाह को किसी विदेशी न्यायालय द्वारा प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विधिमान्य रूप से बातिल किया जा सकता है।" एक अर्थ में, इस प्रश्न का इस प्रकार विरचित किया जाना संविवाद को हिन्दू विवाहों की जांच तक सीमित करके संकीर्ण बना देता है। दूसरे अर्थ में, यह जांच का एक अधिक बड़ा यह प्रश्न उठाकर व्यापक बना देता है कि क्या इस देश में विधिवत् सम्पन्न विवाहों को विदेशी न्यायालयों द्वारा किसी प्रकार विघटित किया जा सकता है । जो भी हो, उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और अपना विनिश्चय इस ली मेसूरिये सिद्धान्त पर आधारित किया कि पति-पत्नी का अधिवास अधिकारिता की एकमात्र कसौटी होता है। संविवाद के वास्तविक प्रश्न को सामने लाने के लिए हम विनिश्चयार्थ प्रश्न को इस प्रकार विरचित करेंगे क्या यू० एस० ए० में नवेडा न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री भारत में मान्य की जाने के योग्य है? यह अनिर्णीत प्रश्न विनिश्चयार्थ है और इससे ऐसे विवाद्यक उत्पन्न हुए हैं जो इस मुकदमे के पक्षकारों के तात्कालिक हित से बढ़कर हैं। विवाह और विवाह-विच्छेद सामाजिक महत्व के विषय हैं।

सरकार द्वारा किया गया प्रस्तुत निर्देश[6] स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित करता है कि आयोग से, सत्या वाले मामले में दिए गए सुझावों को ध्यान में रखते हुए इस समस्या पर सभी पहलुओं से विचार करने का अनुरोध किया गया है ।

1. विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री का विधि आयोग के अध्यक्ष को लिखा गया पत्र सं० फा० 7(6) 175, तारीख 13 मार्च, 1975 (परिशिष्ट देखिए) ।
2. आगे पैरा 1.3 और 1.4 ।
3. विधि मंत्रालय द्वारा मौखिक रूप से किया गया अनुरोध ।
4. सत्या बनाम तेजा सिंह, ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० 105, 107, पैरा 7 (आगे पैरा 1.4)—(1975) 1 उम०नि० प० 894, 901 (पैरा 7) ।
5. ऊपर पैरा 1.1 और परिशिष्ट ।
6. इस रिपोर्ट का परिशिष्ट देखिए ।

सत्या बनाम तेजा।सह में उच्चतम न्यायालय का निर्णय।

1.4 आगे बढ़ने के पूर्व, हम सत्या के मामले[1] के तथ्यों का संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे तो कि यह उपदर्शित हो जाए कि विचारार्थ प्रश्न की प्रकृति क्या हैं। उस मामले में, अपीलार्थी, एक हिन्दू विवाहित स्त्री ने अपने पति के विरुद्ध दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 488 (अब 1973 की संहिता में धारा 125) के अधीन भरण-पोषण के लिए अर्जी फाइल की थी। प्रत्यर्थी ने, जो 5 वर्ष अमरीका में था, यह अभिवचन किया कि अपीलार्थी के साथ उसका विवाह, संयुक्त राज्य अमरीका के नवेडा राज्य के न्यायालय द्वारा 1964 में प्रदान की गई विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विघटित हो चुका था और इसलिए अपीलार्थी उसकी पत्नी नहीं रह गई है।

वह प्रश्न जिस पर विचार किया जाना था, यह था कि क्या नवेडा न्यायालय द्वारा सद्भाविक निवास के आधार पर प्रदान किए गए विवाह-विच्छेद को भारत में मान्यता दी जानी चाहिए। पंजाब उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि:—

(i) नवेडा न्यायालय को पक्षकारों के अधिवास के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करने की अधिकारिता थी, और

(ii) विवाहावस्था के दौरान पत्नी का अधिवास पति के अधिवास के अनुसार होता है।

इस निष्कर्ष के लिए उच्च न्यायालय ने मुख्यतया निम्नलिखित मामलों में प्रिवी कौंसिल द्वारा दिए गए विनिश्चयों का आश्रय लिया:—

(i) ली मैसूरिये बनाम ली मैसूरिये[2]

(ii) अटर्नी जनरल आफ एलबर्टा बनाम कुक[3], तथा निम्नलिखित मामले में हाउस आफ लार्डस् के विनिश्चय का आश्रय लिया:—

(iii) लार्ड एडवोकेट[4] बनाम जागेरी।

1.5 अर्जीदार ने पंजाब उच्च न्यायालय के इस विनिश्चय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील में विचारार्थ प्रश्न यह था कि क्या नवेडा न्यायालय[5] (संयुक्त राज्य अमरीका) द्वारा पारित विवाह-विच्छेद की डिक्री भारत में मान्य की जाने की हकदार है, जैसा कि उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था।[5]

1.5क इस विषय पर विधि का पुनर्विलोकन करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने यह निरूपित किया कि प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के अनुसार, जैसा कि ली मैसूरिये[6] में उसका निर्वचन किया गया है, विवाहित दम्पति का तत्समय अधिवास ही उनके विवाह के विघटन के लिए अधिकारिता की एकमात्र सही कसौटी प्रदान करता है।

किन्तु, इस कसौटी में इंग्लैंड में कानूनी उपांतर हो चुके हैं। उच्चतम न्यायालय ने उन उपांतरों का भी विवेचन किया किन्तु उस विवेचन के यहां पर उद्धृत किए जाने की आवश्यकता नहीं है।

इसके पश्चात्, उच्चतम न्यायालय ने इंगलैंड के नवीनतम ऐक्ट, अर्थात् 'दि रिकागनीशन आफ डाइवोर्सिज एण्ड लीगल सेपरेशन्स ऐक्ट, 1971' के प्रतिनिर्देश किया, जिसने कि विवाह विच्छेदों की मान्यता से संबंधित विधि में कतिपय मूलभूत परिवर्तन किए हैं और उस संबंध में, उसने उसके महत्वपूर्ण उपबंधों[7] का सार दिया।

उच्चतम न्यायालय ने यह कथन करने का भी ध्यान रखा कि अधिवास की कसौटी को बहुत से देशों में नहीं अपनाया गया है और यह संप्रेक्षण किया कि, "हम अन्य देशों द्वारा विकसित किए गए प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय

1. सत्या बनाम तेजा सिंह, ए० आइ० आर 1975 एस० सी० 105 ए०आइ० आर० 1971 पंजाब 80 से अपील पर—(1975) 1 उम० नि० प० 894।

2. लीमैसूरिये बनाम ली मैसूरिये, (1895) अपील केसेज 517 (प्रिवी कौंसिल)।

3. ए० जी० आफ एलबर्टा बनाम कुक, (1926) अपील केसेज 4444 (प्रिवी कौंसिल)।

4. लार्ड एडवोकेट बनाम जगेरी, (1921) अपील केसेज 146 (एच० एल०)।

5. ए०आई०आर० 1975 एस० सी० 107, पैरा 6—(1975) 1 उम० नि० प० 900, पैरा 6।

6. लीमैसूरिये बनाम लीमैसूरिये, (1895) अपील केसेज 517 (प्रिवी कौंसिल)।

7. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 113, पैरा 32—(1975) 1 उम० नि० प० 914, पैरा 32।

विधि के नियमों को यन्त्रवत अंगीकार नहीं कर सकते।[1]" मान्यता के विषय पर अमरीकी विधि के बारे में भी चर्चा की गई है ।

1.6 इस मामले के तथ्यों पर आते हुए, उच्चतम न्यायालय ने यह निरूपित किया कि उच्च न्यायालय का निर्णय इस धारणा पर आधारित है कि पक्षकार नवेडा में[2] अधिवसित थे । किन्तु तथ्य यह है कि पक्षकारों का अधिवास नवेडा में नहीं था । पति ने नवेडा न्यायालय को, जिसने उसके सद्भाविक निवास[3] के आधार पर अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया था, यह कह कर भुलावा दिया था कि वहां वह रहना चाहता है। जब कि वास्तव में वह उसके पश्चात् तुरंत उस स्थान से चला गया । उच्चतम न्यायालय ने निदेश किया कि यदि विदेशी डिक्री अर्जीदार के कपट द्वारा अभिप्राप्त की गई हो तो उसे मान्य नहीं किया जाएगा । कपट के अभिवचन पर उच्च न्यायालय के समक्ष गंभीरतापूर्वक तर्क नहीं किया गया था किन्तु वह तथ्यों को ध्यान में रखते हुए बड़ा तात्विक था ।

वर्तमान मामले में, अभिलेख से यह दर्शित हुआ कि प्रत्यर्थी जनवरी, 1959 में भारत से संयुक्त राज्य अमरीका के लिए रवाना हुआ और उसने न्यूयार्क यूनिवर्सिटी में एक वर्ष और उटाह स्टेट यूनिवर्सिटी में चार वर्ष बिताए हैं और बाद में वहां एक नौकरी कर ली ।उसने नवम्बर, 1964 में नवेडा न्यायालय में विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी फाइल की ।उसने नवेडा न्यायालय में यह मिथ्या व्यपदेशन किया कि वह नवेडा का सद्भावपूर्ण निवासी है जबकि वह डिक्री अभिप्राप्त करने के पश्चात् तुरंत नवेडा से चला गया । इस प्रकार, नवेडा न्यायालय को अधिकारिता नहीं थी। उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त[4] किया कि किसी विशेष प्रयोजन के लिए निवास गुण-मूलक कसौटी पर खरा नहीं उतरता, क्योंकि प्रयोजन के पूरा हो जाने पर निवास समाप्त हो जाएगा ; तथा निवास को तो गुणमूलक तथा मात्रामूलक दोनों कसौटियों पर खरा उतरना चाहिए, अर्थात् कार्य और अभिप्राय दोनों तत्वों में मेल होना चाहिए ।इन तथ्यों के आधार पर ली मैसूरिये के सिद्धान्त की इस मामले[5] से सुसंगति नहीं रह गई है।

1.7 उच्चतम न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 के प्रति भी निर्देश किया, जिसके अधीन कोई विदेशी निर्णय, उस धारक के विभिन्न खंडों में उल्लिखित अपवादों के अधीन रहते हुए, निश्चायक है ।किन्तु उच्चतम न्यायालय ने यह इंगित किया[6] कि उस धारा के खंड (क) के अधीन कोई विदेशी निर्णय वहां निश्चायक नहीं है जहां वह सक्षम न्यायालय द्वारा नहीं सुनाया गया है । इस मामले में, नवेडा न्यायालय, ऊपर उल्लिखित कारणों से विवाह का विघटन करने के लिए सक्षम नहीं था ।

इसके अतिरिक्त, संहिता की धारा 13 (ङ) यह उपबंध करती है कि वहां विदेशी निर्णय निश्चायक नहीं है "जहां वह कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया है ।" यह खंड भी इस मामले के तथ्यों को लागू था।

इन कारणों से, नवेडा न्यायालय द्वारा प्रदान किए गए विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं दी जा सकती। वह आधार जिस पर उच्च न्यायालय ने डिक्री को मान्य किया था, विद्यमान नहीं था।तदनुसार, उच्चतम न्यायालय ने अपील मंजूर कर ली ।

1.8 उच्चतम न्यायालय ने निरूपित किया कि इस विनिश्चय का परिणाम यह होगा कि पक्षकारों को नवेडा में विच्छिन्न विवाह माना जाएगा, किन्तु भारत में उनके अधिवास[7] के देश में उनके विवाह का बंधन अटूट रहेगा ।

उच्चतम न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया[8] कि हमारे विधानमण्डल को ऐसी "अंतराबंधवत् परि-स्थितियों" के लिए कोई हल निकालना चाहिए, जैसा कि ब्रिटेन की संसद् ने 1971 का ऐक्ट पारित करके

1. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 109, पैरा 9 (1975) 1 उम० नि० प० 903, पैरा 9 ।
2. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 116, पैरा 45 (1975) 1 उम० नि० प० 919, पैरा 45 ।
3. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 109, पैरा 15 (1975) 1 उम० नि० प० 906, पैरा 15 ।
4. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 116, पैरा 45 (1975) 1 उम० नि० प० 919, पैरा 45 ।
5. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 116, पैरा 46—(1975) 1 उम० नि० प० 920, पैरा 46 ।
6. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 117 पैरा 49—(1975) 1 उम० नि० प० 921, पैरा 49 ।
7. ए० आइ० आर० 1975 का पृष्ठ 117-118, पैरा 52—(1975) 1 उम० नि० प० 923, पैरा 53 ।
8. ए०आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 118, पैरा 54—(1975) 1 उम० नि० प० 924, पैरा 54 ।

बहुत हद तक हल निकाल लिया है । संभवतः 1970 का हेग कन्वेन्शन नमूने के रूप में कार्य कर सकता है जिसमें कि विधि भेद की विभिन्न पद्धतियों से उत्पन्न संभ्रम से मुक्ति पाने के लिए व्यापक स्कीम है। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि ऐसी किसी विधि में, ऐसी विदेशी डिक्रियों के अमान्य किए जाने के लिए भी उपबन्ध किया जाना होगा जो कि अधिकारिता परक तथ्यों से सम्बन्धित कपट द्वारा उपाप्त की गई हों तथा साथ ही ऐसी डिक्रियों के अमान्यकरण के लिए भी उपबन्ध करना होगा जिनका मान्य किया जाना हमारी लोक नीति के विरुद्ध होगा । तब तक न्यायालयों को अवशिष्ट विवेकाधिकार का प्रयोग करना होगा जिससे कि घोर अन्याय[1] का परिहार किया जा सके। क्योंकि प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि का कोई भी नियम पत्नी को ऐसी डिक्री के प्रति समर्पण करने के लिए विवश नहीं कर सकता है जो धूर्तता से प्राप्त की गई है।"ऐसी डिक्रियां सारवान् न्याय[2] की हमारी धारणाओं के विरुद्ध हैं।"

इस रिपोर्ट में मान्यता की साधारण समस्या पर इन कथनों को दृष्टि में रखते हुए विचार विमर्श किया जाएगा।

विधान की आवश्यकता।

1.9 हम मान्यता विषयक वर्तमान विधि और उससे संबंधित विषयों के बारे में और इंगलैंड में उनकी स्थिति पर आगे विचार करेंगे । इस विषय में आगे बढ़ने से पूर्व, हम इस जांच की सुसंगति और महत्व पर जोर देना चाहेंगे भारतीयों और अन्य व्यक्तियों के भारत में और के बाहर बढ़ते हुए प्रवास के कारण ऐसे विधान की आवश्यकता बढ़ गई है । भारत हेग कन्वेन्शन[3] में पक्षधर नहीं था, किन्तु यह बात इस व्यापक प्रश्न पर विचार करने में महत्वहीन है कि इस विषय पर विधान बनाए जाने की आवश्यकता है या नहीं ।

कन्वेन्शन का कोड ।

1.10 हम प्रसंगवश यहां यह उल्लेख कर दें कि यदि सभी देश हेग कन्वेशन के पक्षधर बन जाते हैं और विदेशी विवाह-विच्छेद के मान्यकरण के लिए आधार के रूप में उस कसौटी को, जिसकी बाबत कन्वेन्शन में उपबंध किया गया है और जो प्रत्येक देश को अपनी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए स्वीकार्य हो, अपना लेते हैं तो पंगु विवाहों की संभाव्यता कम हो जाएगी ।

II. विधानीय युक्ति जो अपनाई जानी चाहिये

विषय की बाबत कार्रवाई करने को सबसे अधिक सुविधाजनक रीति—पृथक विधान।

1.11 इस रिपोर्ट की व्यापक परिधि को ध्यान में रखते हुए जैसा कि ऊपर[4] स्पष्ट किया जा चुका है, इसके पूर्व कि हम इस रिपोर्ट की विषयवस्तु की बाबत चर्चा करने के लिए अग्रसर हों, एक अन्य प्रश्न पर भी विचार कर लिया जाए । वह प्रश्न यह है कि—हमारी सिफारिशों को विधिवतः प्रभावशील करने के लिए कौन सी विनिर्दिष्ट विधानीय युक्ति अपनाई जानी चाहिए । यह प्रश्न उस विशिष्ट स्थिति के कारण उत्पन्न होता है जो कि वैवाहिक और उससे संबंधित विधान के विषय पर भारत में विद्यमान है । पहले तो भारत में, विवाह-विच्छेद और न्यायिक पृथक्करण की विदेशी डिक्रियों को मान्य करने के बारे में सीधे ही उपबंध करने वाली कोई भी अधिनियमिति 'सिविल' प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 41 के उपबंधों[5] के सिवाय, जिनका स्वरूप सामान्य है और जो विनिर्दिष्ट रूप से विवाह-विच्छेदों की मान्यता की समस्या के सम्बन्ध में नहीं है, नहीं है।

दूसरे, हम यह भी बता दें कि भारत में विवाह और विवाह-विच्छेद से संबंधित विधि किसी एक अधिनियमिति में मौजूद नहीं है । जहां तक कि विधि संहिताबद्ध की गई है वह विभिन्न समुदायों के सदस्यों को लागू क्रमशः विभिन्न अधिनियमितियों[6] में अंतर्विष्ट है । इन अधिनियमितियों में विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के विदेशी निर्णयों के मान्यकरण के बारे में विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं है और वह तर्कसंगत है, क्योंकि विदेशी निर्णयों को मान्यता देने का प्रश्न उनके विधि सम्मत विस्तार क्षेत्र के बाहर है । इस स्थिति में, हमारी सिफारिशों को केवल मात्र एक अधिनियम का संशोधन करके कार्यान्वित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा किए जाने से अन्य अधिनियमों द्वारा शासित समुदाय छूट जाएंगे ।

1. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 118, पैरा 53 (1975) 1 उम० नि० प० 924, पैरा 54 ।
2. ए० आइ० आर० 1975 एस० सी० का पृष्ठ 118, पैरा 53 (1975) उम० नि० प० 924, पैरा 54 ।
3. विदेश मंत्रालय से प्राप्त सूचना ।
4. ऊपर पैरा 1.3 ।
5. आगे अध्याय 4 ।
6. आगे अध्याय 5-6 ।

हमारी सिफारिशों को कार्यान्वित करने की एक समेव रीति यह होगी कि उन अधिनियमितियों में से प्रत्येक का संशोधन किया जाए। स्पष्ट है कि यह कोई बहुत सुविधाजनक उपाय नहीं है। साथ ही इस पर कतिपय सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आपत्तियां की जा सकती हैं। इसके अतिरिक्त, ऐसा करने से वे समुदाय छूट जाएंगे जिनकी स्वीय विधि में संहिताबद्ध नहीं है। हम ऐसी आपत्तियों के बारे में विस्तार से बाद[1] में विचार करेंगे।

हमारी सिफारिशों को कार्यान्वित करने का दूसरा वैकल्पिक तरीका यह होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता और भारतीय साक्ष्य अधिनियम के उन उपबंधों का संशोधन कर दिया जाए जिनके प्रति हमने पहले ही ध्यान[2] दिलाया है, तथा जो विदेशी निर्णयों और प्रस्थिति से संबंधित कतिपय निर्णयों के बारे में साधारण उपबंध है। किन्तु यह भी कोई बहुत उपयुक्त मार्ग नहीं है, क्योंकि ये उपबंध विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की डिक्रियों तक ही सीमित नहीं हैं। इसके अलावा, ये प्रक्रियात्मक उपबंध है। इनके अतिरिक्त, जैसा कि उन विभिन्न मुद्दों से, जो कि इस रिपोर्ट[3] में आगे दिए जाएंगे, स्पष्ट हो जाएगा, हमारी सिफारिशों को प्रभावशील करने के लिए विस्तृत उपबंधों की अपेक्षा होगा और प्रारूप की सुविधा की दृष्टि से, हमारी राय में यह साध्य नहीं होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता या भारतीय साक्ष्य अधिनियम में के इस उपबंध का मात्र संशोधन करके उन्हें समाविष्ट किया जाए। इसलिए, हमारी राय में, समुचित मार्ग तो पृथक् और स्वयं पूर्ण विधान बनाना होगा, जो कि भारत में विदेशी विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की मान्यता देने के बारे में उपबन्ध करे।

विद्यमान अधिनियमितियों का संशोधन करने के प्रति सैद्धांतिक और व्यावहारिक आपत्तियां।

1.12 हमने ऊपर[4] उन कतिपय सैद्धांतिक और व्यावहारिक आपत्तियों के प्रति निदेश किया है जो विभिन्न समुदायों के व्यक्तियों के विवाहों की बाबत उपबंध करने वाली विभिन्न अधिनियमितियों का मात्र संशोधन करने के उपाय के प्रति उठाई जा सकती है। अब, हम उन आपत्तियों का सविस्तार उल्लेख कर दें। इस संदर्भ में जिस बात का उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि जब कि इन अधिनियमितियों में से, यदि सभी नहीं तो अधिकांश, सिवाए विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के, जिसके अधीन विवाह करने वाले पक्षकारों का धर्म महत्वहीन है, विशिष्ट धर्म के व्यक्तियों से सम्बन्धित है, वे विवाह-विच्छेद डिक्रियां या न्यायिक पृथक्करण जिनसे हमारी सिफारिशों का संबंध है, विदेशों में पारित डिक्रियां होंगीं और वे उन धर्मों के अनुयायी व्यक्तियों तक सीमित नहीं होंगी। ये डिक्रियां ऐसे व्यक्तियों तक से संबंधित हो सकती हैं जो किसी धर्म को नहीं मानते हैं। दूसरे, हो सकता है कि ये डिक्रियां, भारतीय विधान के अधीन विवाहित व्यक्तियों की दशा में भी, ऐसे आधारों पर पारित की गई हों जिनकी बाबत यह आवश्यक नहीं है कि वे सुसंगत भारतीय विधान में निर्दिष्ट आधार हों किंतु ऐसे आधारों पर पारित की गई हों, जो उन विदेशी न्यायालयों द्वारा, जिनकी डिक्रियां बाद में मान्य की जाने के लिए आती हैं, लागू की गई विधि के अधीन ग्राह्य माने जाते हैं।

वर्तमान अध्याय में, हमें उस विधि के बारे में, इस विवादग्रस्त प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है जो विवाह-विच्छेद को डिक्रियों को पारित करते समय किसी विशिष्ट देश के न्यायालयों द्वारा लागू किया जाना चाहिए। किन्तु हम यह कह सकते हैं कि वह विदेशी न्यायालय, जो अधिकारिता का प्रयोग करता है, विवाह-विच्छेद के आधारों[5] के बारे में, कम से कम कामनवेल्थ में, तो सामान्यतः भारतीय अधिनियमिति को नहीं अपितु अपनी ही विधि को लागू करेगा।

1.13 उस दशा में भी, जब कि पक्षकार विवाह होने के समय भारत में अधिवसित थे, यह अकल्पनीय नहीं है कि कोई विदेशी न्यायालय ऐसे हिन्दुओं या मुसलमानों के बीच हुए विवाह का विघटन कर दे जिनका विवाह भारत में हुआ था और जो विदेशी न्यायालय में कार्यवाहियों के समय उस विदेश में रह रहे हों। ऐसा करने में यदि विदेशी न्यायालय अन्यथा सक्षम है, तो वह अपनी प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के सुसंगत नियमों का कोई भंग किए बिना, विवाह का ऐसे आधारों पर या ऐसी परिस्थितियों में विघटन कर सकता है जो हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन या भारत में यथा प्रशासित मुस्लिम विधि या उनके कानूनी उपांतरों के अधीन विधिमान्य हों। ऐसी स्थिति में, हिन्दू विवाह अधिनियम या अन्य सदृश विधि में मान्यता के विषय में प्रस्थापित उपबंधों का जोड़ा जाना इस विषय[5] की बाबत उपबंध करने की कोई बहुत उपयुक्त पद्धति नहीं होगी।

1. आगे पैरा 1.12 देखिए।
2. ऊपर देखिए।
3. विशिष्टतया आगे अध्याय 10.11 देखिए।
4. ऊपर पैरा 1.11।
5. आगे अध्याय 3 देखिए।

इसके अतिरिक्त, इसका व्यावहारिक पहलू भी है जो वह दुर्वह प्रक्रिया है जो उस दशा में स्पष्टतया आवश्यक होगी यदि संसद् को विभिन्न समुदायों के सदस्यों के विवाहों से संबंधित उन अनेक अधिनियमितियों का संशोधन करना हो, जो इस समय प्रवृत्त हैं।

हो सकता है कि वे पक्षकार जिन्होंने विदेश में विवाह-विच्छेद प्राप्त कर लिया है, भारत में अधिवसित हों या अधिवसित नहीं भी हों। हो सकता है उनका विवाह भारत में हुआ हो या भारत के बाहर हुआ हो, किन्तु भारतीय अधिनियमिति के अधीन हुआ हो या वह भारत के बाहर अनुष्ठित किया गया हो, किन्तु भारतीय अधिनियमिति के अधीन न किया गया हो। स्पष्ट है कि इन विभिन्न क्रम परिवर्तनों और सम्मिश्रणों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को पृथक् अधिनियमिति[1] बना कर अधिक कारगर ढंग से हल किया जा सकता है।

III. सामान्य दृष्टिकोण

सामान्य दृष्टिकोण के बारे में मूल प्रश्न।

1.14. हमारी सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए अपनाई जाने वाली समुचित विधानीय युक्ति के बारे में चर्चा करने के पश्चात्, हम उस मूल प्रश्न की ओर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं जिस पर कि विचार किया जाना है, अर्थात् ऐसे मामलों में सामान्य दृष्टिकोण क्या होना चाहिए। यह कहना आसान है कि पंगु विवाह से बचा ही जाना चाहिए। किन्तु हम यह सुझाव देते हैं कि इस प्रस्थापना को किसी निश्चित सिद्धांत का दर्जा नहीं दिया जा सकता। ऐसे मामले अवश्य हो सकते हैं जिनमें विवाह के पक्षकारों में से कोई पक्षकार वास्तविक कारणों से यह पसन्द करे कि विवाहावस्था बनी रहे और विदेशी विवाह-विच्छेद की उपेक्षा कर दी जाए। इसका एक सुविदित-दृष्टान्त वह मामला है जिसमें विरोधी पक्षकार[2] की सुनवाई किए बिना विदेशी न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद प्रदान कर दिया गया था। यह स्पष्ट है कि ऐसे मामलों में यह तर्क कि पंगु विवाह से बचना चाहिए, न्याय के अन्य तर्कों से अभिभूत हो जाता है।

इसी के सदृश परिस्थितियां भी हो सकती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि किसी विदेशी विवाह-विच्छेद को मान्यता देने के लिए उदार और अविशेषित शब्दों में कसौटी के निरूपण से पंगु विवाहों की संख्या घट सकेगी किन्तु इससे सदैव न्याय की प्राप्ति नहीं होगी। ऐसे बहुत से मामले हैं जिनमें विरोधी पक्षकार के लिए (वह पक्षकार जो विदेशी न्यायालय में विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी था) न्याय की यह अपेक्षा होती है कि विदेशी न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत विषय पर पुनः विचार किया जाना चाहिए। इसलिए जिस मूलभूत पहलू पर विचार किया जाना है वह यह कि इस विषय पर अधिकथित किए जाने वाले नियम ऐसे होने चाहिए जो सारभूत रूप से दोनों पक्षकारों के प्रति सारभूत न्याय करें और जो उस विचारण के अध्यधीन रहते हुए यावत्साध्य पंगु विवाहों का परिहार करें।

चयन का विस्तृत परिक्षेत्र।

1.15 चयन के लिए विस्तृत परिक्षेत्र है। एक ओर तो विवाह-विच्छेद को कोई मान्यता न दी जाने और दूसरी ओर प्रत्येक विवाह-विच्छेद को मान्यता दी जाने की चरमसीमाओं के बीच स्पष्टतया संभव उतारचढ़ावों के लिए बहुत गुंजाइश है। ऐसे समय पर, जब आंतरिक विधि के विषय के रूप में, विवाह विच्छेद को अत्यन्त परिमित रखा गया है, यह स्वाभाविक है कि विवाह-विच्छेद के लिए अधिकारिता और विदेशी विवाह-विच्छेदों को मान्यता दी जाने की बाबत भी इसी प्रकार का सतर्क दृष्टिकोण अपनाया जाए। यह बात **विल्सन** बनाम **विल्सन**[3] में लार्ड पेंजिएन्स के प्रसिद्ध कथन में प्रतिबिंबित होती है: —

> "इसलिए यह बात न्यायसंगत और युक्तियुक्त दोनों ही हैं कि विवाहित व्यक्तियों के मतभेदों का समायोजन उस समुदाय की विधियों के अनुसार, जिससे कि वे संबंधित हैं, किया जाना चाहिए और उनकी बाबत कार्रवाई ऐसे अधिकरणों द्वारा की जानी चाहिए जो अकेले उन विधियों का प्रशासन कर सकते हों। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त का सच्चाई से पालन करने से उस लोकापवाद का प्रवारण होगा जो उस समय उठता है जब कोई पुरुष और कोई स्त्री किसी एक देश में पति और पत्नी अभिनिर्धारित किए जाते हैं और दूसरे देश में अजनबी।"

1. ऊपर पैरा 1.11।

2. हैग कन्वेन्शन के अनुच्छेद 80 की तुलना कीजिए।

3. विल्सन बनाम विल्सन, (1872) एल०आर० 2 पी० एण्ड डी० 435, 442।

1.16 जैसा कि वोल्फ ने मत व्यक्त किया है, संपूर्ण विश्व के किसी भी देश में सभी न्यायालयों के सभी निर्णयों को, इस बात के बावजूद मान्यता देना असंभव है कि उससे प्रकटतया लाभ हैं क्योंकि इस प्रकार की अनिबाधित मान्यता से होने वाली हानियां भी उतनी स्पष्ट हैं : वोल्फ के विचार ।

"यह उचित नहीं है कि विश्व के प्रत्येक न्यायालय पर अनिन्द्य रूप से न्याय प्रशासन करने के लिए विश्वास किया जाए। हो सकता है कि न्यायाधीशों को रिश्वत का दिया जाना इतना विरल हो गया हो कि उससे यह जोखिम घटकर न्यूनतम हो गया हो; किन्तु कुछ देशों में असंतोषजनक विधि शिक्षा, राजनैतिक उद्देश्यों से न्यायधीशों की नियुक्ति और वे प्रभाव जो कि राज्य या राज्य में का कोई शक्तिशाली अपराधशील संगठन न्यायाधीशों पर डालता है, निर्णयों को विश्वव्यापी मान्यता दी जाने में बड़ी बाधाएं हैं। इस के अतिरिक्त, वहां भी जहां कि न्यायालयों के किसी प्रकार के भ्रष्टाचार का कोई भी खतरा नहीं है वहा भी दो देशों के बीच नैतिकता या लोकनीति के प्रश्नों के प्रति उनके मौलिक दृष्टिकोण के अन्तर, बहुधा किन्हीं विशिष्ट निर्णयों की मान्यता को ऐसा बना देते हैं कि वह अवांछित प्रतीत होती है। अंत में, सामान्य मान्यता के परिणामस्वरूप वहां गंभीर अन्याय भी हो सकता है, जहां कि एक ही सम्बन्ध को दो देशों के न्यायालयों द्वारा भिन्न रूप में माना जाता है, जैसा कि विवाह, विहाह-विच्छेद, विरासत आदि के मामले में होता है।"

1.17 कार्डोजो ने, अपनी "पैरा डाक्सैज. आफ लीगल साइन्स" में विश्रान्ति और गति, स्थायित्व और परिवर्तन की समस्याओं के बारे में, विशेष रूप से जिस रूप में कि वे विधि[1] में प्रतिबिम्बित होती है, चर्चा की है। उसके शब्दों को बहुधा उद्धृत किया गया है--परस्पर विरोधियों का पुनर्मेल, प्रतिपक्षों का संविलय, विपक्षा का संश्लेषण ये विधि की महान समस्याएं हैं। कार्डोजो का मत ।

1.18 अंत में विधि भेद से संबंधित नियमों की न्याय की दृष्टि से, और सामाजिक नीति को उस उदारता विचारणा से, जो कि परस्पर विरोधी विधियां उत्पन्न कर सकती है,[2] जांच की जानी है। न्याय--अंतिम विचारण ।

IV. वैषम्य के बारे में नियमों की प्रकृति

1.19 इस प्रक्रम में, हम विधि वैषम्य से संबंधित नियमों की प्रकृति के बारे में कतिपय संप्रेक्षण करना चाहेंगे। इन नियमों को मूल से प्राय: अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियम समझ लिया जाता है, किन्तु, वास्तव में, वे "राष्ट्रों की विधि" के परिक्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आते हैं--वे आपस में राष्ट्रों के आचरण को विनियमित करने के लिए तात्पर्यित नहीं हैं। उनकी विषयवस्तु केवल इस अर्थ में "अन्तर्राष्ट्रीय" होता है कि उसमें विदेशी तत्व वाले सम्बन्ध, कार्य या घटनाएं अथवा अन्य प्रश्न अन्तर्वलित होते हैं अथवा यदि दूसरे शब्दों में कहा जाए तो उनमें एक राष्ट्र की सीमाओं से परे के प्रश्न अन्तर्वलित होते हैं। नियमों की प्रकृति ।

1.20 वस्तुत: वैषम्य नियमों का जन्म प्रत्येक पृथक विधिक पद्धति से होता है। वास्तव में, "वैषम्य" पद केवल मात्र एक सुविधाजनक उपमा है, जो कि दो पहलुओं को उपदर्शित करती है, अर्थात् :-- विधि वैषम्य के बारे में के नियमों की प्रकृति ।

(i) प्रश्नगत तथ्य या विधिक संबंध सम्भवत: विभिन्न विधिक पद्धतियों या अधिकारिताओं से शासित होता है, तथा (ii) नियमों को यह विनिश्चय करने के लिए आवश्यकता होती है कि इन विभिन्न विधिक पद्धतियों या अधिकारिताओं में से कौन सी वास्तविक मामले को लागू की जानी चाहिए चूंकि विभिन्न विधिक पद्धतियां एक ही समय में विद्यमान रहती है, अत: उनकी प्रयोज्यता[3] के बारे में अवधारण करना आवश्यक हो जाता है। इस बारे में निनिश्चय कि कौन सा नियम लागू होना चाहिए, अन्ततोगत्वा, सभी संबंधित व्यक्तियों के प्रति यावतशक्य न्याय संगत और उचित होना चाहिए।

1.21 एक महान अमरीकी न्यायाधीश लर्नेड हेंड ने भिन्न-भिन्न रीति[4] से बारम्बार यह कथन किया है कि न्यायालय केवल अपने ही अधिकारों को प्रवर्तित करते हैं, तथा विदेशी अधिकारों[5] को कभी भी नहीं । समरूप अधिकारों का प्रवर्तन करने वाले न्यायालय ।

1. कार्डोजो : दी पैरेडॉक्सैज आफ लीगल साइन्सेज (1928), पृष्ठ 4।
2. कैवर्स--(1933) 47 हार्वर्ड ला रिव्यू 173 में।
3. "करेंट डेवैलेमेंटस इन प्राइवेट इन्टरनेशनल ला" (1964), खण्ड 13, अमेरिकन जरनल आफ कम्पैरेटिव ला, पृष्ठ 542 देखिए।
4. (क) गिन्नैस बनाम मिलर (1923) 291 एफ, 769, 770।
   (ख) जैम्स मैकगी, (1924) 300 एफ 93, 96।
   (ग) डाइरेक्शन दर डिस्कोटो-गैसलशैफ्ट बनाम यू० एस० स्टील कार्पोरेशन, (1924) 300 एफ, 741 744।
   (घ) शीर बनाम राकनी मोटर्स कार्पोरेशन, (1934) 68एफ (2डी) 942, 944।
   (ङ०) सीजनेन बनाम मेयर, (1938) 100 एफ (2डी), 367।
5. अर्नेष्ट लॉरेन्जन : बुक रिव्यू--(1948) 64 एल, क्यू० आर० 129, 130 पर देखिए।

इस प्रकार, गिन्नैस बनाम मिलर में न्यायाधीश लैनैड हेंड ने यह कहा[1]—

"जब कोई न्यायालय अन्यत्र किए गए किसी अपकृत्य का संज्ञान करता है तब कभी-कभी वस्तुतः यह कहा जाता है कि वह विधि के अधीन उद्भूत होने वाली बाध्यता का जहां कि अपकृत्य उद्भूत होता है, प्रवर्तन करता है………। किन्तु कोई भी न्यायालय अपने ही शासक की विधि के सिवाय किसी अन्य विधि को प्रवर्तित नहीं कर सकता और जब कोई वादकर्ता अपकृत्य वाले स्थान से बाह्य न्यायालय के पास आता है तो वह उससे शासक द्वारा मान्य की गई बाध्यता की ही याचना कर सकता है। सभ्य विधि के अधीन विदेशी शासक अपनी ओर से ऐसी बाध्यता अधिरोपित करता है जो उस स्थान में जहां कि अपकृत्य होता है, उद्भूत होने वाली बाध्यता के लगभग उतने समरूप हो जितना कि संभव है।" लार्ड पार्कर ने इंगलैण्ड के मामले[2] में बहुत कुछ इसी आशय का मत व्यक्त किया है :—

"हमारे न्यायालयों के प्रत्येक विधिगत विनिश्चय में समुचित साक्ष्य द्वारा यथा अभिनिश्चित मामले के तथ्यों को हमारी अपनी ही विधि लागू की गई होती है। हो सकता है कि इन तथ्यों में से कोई तथ्य किसी विदेशी विधि की अवस्था हो किन्तु वह विधि विदेशी न होकर हमारी अपनी ही विधि होती है जिसे कि प्रभावी किया जाता है, चाहे वह नुकसानी के लिए निर्णय, व्यादेश, अधिकारों और दायित्वों को घोषणाएं करने वाला आदेश हो या अन्य स्थिति हो।"

V. विदेशी निर्णयों को मान्यता देने की समस्या

मान्यता की समस्या की आवश्यक प्रकृति।

1.22 इस उद्देश्य से कि मान्यता की समस्या पर, ऊपर किए गए साधारण संप्रेक्षणों के आधार पर यथोचित रूप से विचार किया जा सके, यह वांछनीय है कि उस समस्या को उचित परिप्रेक्षण में रखा जाए। मान्यता की समस्या तात्विक रूप से, किसी विदेशी न्यायिक कार्य को विधिमान्यता देने की समस्या है। हम विदेशों में विवाह-विच्छेदों के बारे में भी यथावसर चर्चा करेंगे किन्तु मुख्यतया इस विषय पर चर्चा विदेशी न्यायालयों के न्यायिक अवधारणों के प्रति निर्देश से की जाएगी।

यह समस्या पूर्णतः नई नहीं है और इसके संबंध में हमारे विचार-विमर्श के लिए उत्पन्न होने वाले विवाद्यक भी अज्ञात नहीं हैं। किन्तु यह कहा जा सकता है कि व्यक्तियों की गतिशीलता में वृद्धि होने के कारण और उन विभिन्न विधिक पद्धतियों के कारण, जिनका कि किसी व्यक्ति को अपने राज्य की सीमाओं से बाहर जाने के कारण सामना करना पड़ सकता है, इसके संबंध में उत्पन्न होने वाले विवाद्यकों की आवृत्ति आधुनिक समय में बढ़ गई है।

निर्णयों की मान्यता का इतिहास—सिविल विधि।

1.23 सिविल विधि पद्धति[3] में भी उसकी बहुत सी स्वतंत्र प्रादेशिक इकाईयों के होते हुए, विदेशी निर्णयों को मान्यता देने की समस्या अपेक्षाकृत नई है।

(क) रोमन निर्णयों को देश[4] के प्रान्तों के भीतर कहीं भी निर्बाध रूप से निष्पादित करने की चिरप्रतिष्ठित रोमन प्रथा प्रत्यक्षतः मध्य युग के ईसाई साम्राज्य के सैद्धान्तिक सत्व पर्यन्त ले जाई गई है। इस तथ्य के कारण कि मध्य युग में ईसाई लोगों के बीच रोमन विधि पर आधारित जस कम्यून विद्यमान था, निर्णयों का प्रवर्तन न्याय का और पारस्परिक सहायता का अत्यन्त नैसर्गिक निदेश प्रतीत होता था'[5] इस प्रथा की पुष्टि तो 16वीं और 17वीं[6] शताब्दियों को नैसर्गिक और अन्तर्राष्ट्रीय विधि की संकल्पनाओं से भी होती है।

(ख) उस समय भी जब कि प्रभुता[7] के सिद्धान्त के जन्म के साथ ही विदेशी निर्णयों की मान्यता से संबंधित आशंकाएं प्रस्तुत हुई, विदेशी राजा की भावनाओं के प्रति आदर का होना, उसकी स्वीकृत "अधिकारिता" पर आधारित उसकी डिक्रियों की पुनः परीक्षा को, प्रवारित करता रहा।

---

1. गिन्नेस बनाम मिलर, (1923) 291 फंड 768, 770 चैशायर द्वारा उद्धृत (1975), पृष्ठ 28 और केवरस (1950) 63 सार्वे एल० आर० 0822 देखिए।
2. डायनामिट ऐक्शन—जैशला फट बनाम रियोटिन्टो कम्पनी, (1918) अपील केसेज 292, 302।
3. श्रैन्शविग : कनफिलक्ट आफ लाज (1962), पृष्ठ 16।
4. डाइजैस्ट. डीरे ज्यूडोकेटा, 42, 1, 15, 1 (अलपियानस)।
5. लोईडास इन्टरनेशनेल जिवीलप्रोजेस्चट आफ ग्रंड डर। इयारी केसैटागाबंग एंड प्रेक्सिस (1906) 13, श्रैंसविग द्वारा कंफिलक्ट आफ लाज (1962), पृष्ठ 16 पर उद्धृत।
6. नसबोस, ऐ कंसाइज हिस्ट्री आफ दिला आफ नेशन्स (1947) पृष्ठ 69 देखिए।
7. नसबौम, कंसाइज हिस्ट्री आफ दि ला आफ नेशंस (1947) पृष्ठ 56।

वेटेल[1] ने लिखा है[2] कि : "अन्तिम दण्डादेश के न्याय की परीक्षा का आरम्भ करना उस व्यक्ति की अधिकारिता पर आक्रमण करना है, जिसने उसे पारित किया है"।

बाद में केवल राष्ट्रवाद के विकास से ही अंतर्राष्ट्रीय शिष्टाचार की यह अभिवृति (जो बहुधा उपलक्षित करार या सहमति के प्रति निदेशों द्वारा तर्कान्वित की गई है) "बार्स कोमिटी" (शिष्टता रोधन) के रूप में बदल गई, जिससे कि प्रत्येक राज्य को विदेशी न्यायालयों के निष्कर्षों की संवीक्षा करने की पूर्ण स्वतंत्रता मिल गई।

शिष्टता रूपी दृष्टिकोण का प्रभाव।

1.24 अन्तिम वर्णित अभिवृति (शिष्टता अर्थात् विवेकाधिकार का सिद्धान्त) वर्तमान यूरोपीय विधि और उसके व्युत्पादों में प्रतिबिम्बित होती है जिनमें कि लगभग सभी अपसारी मत और अभिवृत्तियां विद्यमान रहीं हैं जिनके अन्तर्गत नए सिरे से विचारण पर आग्रह पूर्वक विदेशी निर्णयों[3] के मान्य किए जाने से स्पष्ट इन्कार से लेकर, परस्परिकता की शर्त पर उन्हें मान्यता देने वाली विधि से होते हुए, उनका लगभग बिना शर्त प्रवर्तन तक आता है।

विदेशी निर्णयों[4] के प्रति फ्रांसीसी अभिवृति का तथाकथित कोड माईचेंट के, जो कि 1629 का एक आर्डिनेंस है, आर्टिकल 121 से सम्बन्ध मिलता है, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि फ्रांसीसी नागरिकों के विरुद्ध प्राप्त किए गए किसी विदेशी निर्णय पर नए[5] सिरे मुकदमा लड़ा जा सकता है।

समस्या का मानवीय समस्या होना।

1.25 अधिकारिता के, विशेष रूप से वैवाहिक मामलों के संबंध में अधिकारिता के, संघर्ष की समस्या तत्वतः मानवीय समस्या है। चाहे कोई भी विधि हो, कोई भी धर्मदर्शन हो, कोई भी समाजिक व्यवस्था हो, सभी समयों पर और सभी देशों में भिन्न लिंगी मामलों के बीच एक ही प्रकार की समस्या पैदा होती है। मनुष्य समस्याएं उत्पन्न करते हैं, और विधि निर्माता उन समस्याओं को लागू होने वाले नियमों की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं: वकील केवल मात्र ऐसे तकनीशियन है जो अपने मुवक्किलों की तात्कालिक कठिनाईयों की हल करने के लिए नियम लागू करने का प्रयास करते हैं किन्तु हमेशा सफल रूप से नहीं, ऐसा होता आया है और सदैव ऐसा ही[6] होता रहेगा।

विभिन्न विधि व्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व में अंतर्निहित संघर्ष की समस्या जटिलता।

1.26 संघर्ष की समस्या एक से अधिक विधि व्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व में अन्तर्निहित है जब तक दो या अधिक राज्यों के न्यायालय एक ही मामले में अधिकारिता का दावा कर सकते हैं और विधियां भिन्न-भिन है, तब तक संघर्ष की समस्या का उठना निश्चित है।

इस समस्या की बाबत कार्यवाही करने में, संबंधित देश के न्यायालय को यह अवधारित करना होता है कि उस पर कौन सी विधि लागू की जाए, अर्थात् उस पर अपनी ही विधि लागू की जानी है या किसी अन्य देश की विधि। जहां मामला आन्तरिक है वहां यह जांच की जानी होगी कि विधि की कौन सी पद्धति लागू की जानी चाहिए। किन्तु जहां किसी विदेशी न्यायालय का निर्णय पहले से ही विद्यमान हो, वहां इस जांच के साथ यह जांच भी की जानी चाहिए कि विदेशी निर्णय को मान्यता दी जाए या नहीं और यदि मान्यता दी जाए तो किस सीमा तक और किन-किन बातों में तथा किन शर्तों--सारभूत् या प्रक्रियात्मक--के अधीन।

1.27 कलकत्ता वाले एक मामले[7] में मु० न्या० रेनकिन ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था जो स्पष्ट रूप से इस पहलू को प्रदर्शित करता है:--

"यह स्पष्ट है कि जहां तक विभिन्न देशों की विवाह विषयक विधि में व्यापक विविधता है। जैसी कि वस्तु-स्थिति है यह आवश्यक है कि प्रत्येक विवाह के लिए, विवाह-विच्छेद के प्रशन पर न्यायनिर्णयन करने के

1. वेटेल ला आफ नेशंस या प्रिंसिपल आफ दि ला आफ नेचर। एप्लाइड टू दि कंडक्ट एण्ट एफेयर्स आफ नेशन्स एण्ड सोवरीन्स (ट्रानाल, 1760) खण्ड 1, 148 (बुक 11, अध्याय 7, सेक्शन 84) ग्रैसविंग (1962) द्वारा पृष्ठ 16 पर उद्धृत।
2. वेटेल, ग्रैसंविग द्वारा कान्फिलक्ट आफ लाज़ (1962), पृष्ठ 16 पर उद्धृत।
3. (क) लारेंसन, "दि एनफोर्समेंट आफ अमेरिकन जजमेंट्स—एब्रोड", (1919) 20 येल एल-जे-188।
   (ख) केनेडी : "रिकागनीशन आफ जजमैंट्स इन परसोने : दि मीनिंग आफ रैसिप्रोसिटी", (1957) 35 कैन बार रिव्यू-123।
4. हिलटन बनाम ग्नोट, (1895) 159, यू० एस० 173 से तुलना कीजिए।
5. (क) जोंसन : "फोरेन जजमेंट्स इन क्यूबैक," (1957) 35 केन० बार० रिव्यू, 911;
   (ख) ग्रैसविंग, "कान्फिलक्ट आफ लाज़" (1962), पृष्ठ 17, देखिए।
6. जोसफ जैक्सन, रिव्यू आफ विलियम हेज लेक्चर्स आन मैरिज, (1969) 85 एल०क्यू०आर०, पृष्ठ 291 से तुलना कीजिए।
7. लिडन बनाम गर्डारयन, ए० आइ० आर० 1929 कलकत्ता 599, 601।

प्रयोजनार्थ अभिनिश्चय न्यायालय होना चाहिए । सभी देश अन्तर्राष्ट्रीय विधि के मामले में एक दृष्टिकोण नहीं अपनाते । किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विधि के बारे में, वह दृष्टिकोण जो कि इंगलड में ऐसे न्यायाल में लागू है, यह है कि विवाह-विच्छेद मंजूर करने की शक्ति उस देश के न्यायालय को होती है जिसमें पक्षकार अर्जी की तारीख को अधिवसित हों । हो सकता है कि अन्य देश इस संबंध में अंतर्राष्ट्रीय विधि बाबत भिन्न विचार रखते हों । किन्तु अब यह सुस्थापित है कि इसी दृष्टिकोण पर इंगलैंड की विधि आधारि है और वह दृष्टिकोण, इस न्यायालय के सभी प्रयोजनों के लिए, विधायक के समादेशकृत निरपवाद : अविशेषित विधि है।

समस्या की जटिलता ।

1.28 विधि संघर्ष की यह समस्या, विधि व्यवस्थाओं के सह-अस्तित्व में अन्तर्निहित होने के अला एक जटिल समस्या है, जैसा कि ब्रीन के मामले में उदाहरण के साथ स्पष्ट किया गया है । ब्रीन[1] बनाम ब्रं में न्या० कारमिन्स्की के समक्ष प्रश्न यह था कि आयरलैण्ड का न्यायालय विवाह-विच्छेद[2] की इंगलैण्ड डिक्री की मान्यता दे या नहीं । "आयरलैण्ड के 1937 के संविधान के आर्टिकल 41, सैक्शन 3(3) अधीन : कोई भी व्यक्ति जिसका विवाह किसी अन्य राज्य की सिविल विधि के अधीन विघटित कर दि गया है, किन्तु जो इस संविधान द्वारा स्थापित सरकार और संसद् की अधिकारिता के भीतर तत्समय प्रवृ विधि के अधीन अस्तित्वशील विधिमान्य विवाह है, इस प्रकार विघटित किए गए विवाह के दूसरे पक्षकार जीवनकाल के दौरान उस अधिकारिता के भीतर विधिमान्य विवाह करने में समर्थ नहीं होगा ।" इस उपब का पत्नी अर्जीदार द्वारा आश्रय लिया गया था, जो कि 1957 में डबलिन में रजिस्ट्रार के कार्यालय में प्रत्य के साथ हुए अपने विवाह को इस आधार पर बातिल कराना चाहती थी कि उसके पति की पूर्व पत्नी उस सम जब कि उसने 1944 में प्रत्यर्थी से विवाह किया था, जीवित थी । पति ने कहा कि उसका पूर्व विवाह ह कोर्ट द्वारा विघटित किया जा चुका था, क्योंकि वह सभी तात्विक समयों पर इंगलैण्ड में अधिवसित था । उ बारे में पत्नी का उत्तर यह था कि इंगलैण्ड की डिक्री आयरलैण्ड में विधि द्वारा मान्य नहीं थी और परिणा स्वरूप 1953 में किया गया विवाह द्विपत्नीक था ।

न्या० कारमिन्सकी ने अपने निर्णय के दौरान यह मत व्यक्त किया कि आयरलैण्ड की विधि के अधी विवाह-कार्य के स्वरूप के बारे में इसमें किसी कठिनाई का प्रश्न नहीं था, और यह संकेत नहीं किया गया श कि पत्नी या उस रजिस्ट्रार को, जिसने विवाह-कार्य कराया था, पति की प्रास्थिति के बारे में किसी भी प्रक से प्रवंचित किया गया था । पत्नी पति के पूर्व विवाह के बारे में और इंगलैण्ड में उसके विघटन के बारे पूर्ण रूप से अवगत थी और पति को विवाह प्रमाणपत्र में विच्छिन्न के रूप में वर्णित किया गया था । ल: महोदय ने प्रत्यास्मरण किया कि आयरलैण्ड की सुप्रीम कोर्ट के मु० न्या० मेगायर और न्या० मूर ने आयरलै की मायो-पैरट बनाम मायो-पैरट[3] में प्रश्नगत मुद्दे पर रायभेद व्यक्त किया था । मु० न्या० मेगायर की र राय थी कि उपधारा (3) स्पष्टतमः शब्दों में यह बताती है कि किसी अन्य राज्य को विधि के अधीन विघटि किया गया विवाह आयरलैण्ड की विधि की दृष्टि में अतिस्तत्वयुक्त विधिमान्य विवाह बना रहता है । न्या मूर ने, इस बात को माना कि "साइरियचटास" ऐसी विधि पारित कर सकता है कि विवाह का कोई भी विघट चाहे वह कहीं भी किया गया हो, यहां तक कि वहां भी जहां कि पक्षकार डिक्री सुनाने वाले न्यायालय के दे में अधिवसित हों, पूर्ववर्ती विवाह को विघटित करने के लिए प्रभावी न किया जाए किन्तु उन की राय यह कि उसने ऐसा नहीं किया तथा संविधान के पारित किए जाने के समय विद्यमान विधि यह थी कि किसी विदे न्यायालय द्वारा अपनी अधिकारिता के भीतर अधिवसित व्यक्तियों की बाबत किया गया विवाह विच्छेद आयरलैण्ड विधिमान्य था । न्या० कारमिन्स्की का विचार यह था कि यह अत्यन्त असम्भाव्य है कि स्पष्ट शब्दों के बि ही संविदा का आशय प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के वस्तुतः सार्वभोलिक नियम को उलटना उनकी राय में था अनुच्छेद 41 में यह इंगित करने वाली कोई भी बात नहीं थी कि और विधान न बनाए जाने की स्थिति न्यायालय उस विदेश के न्यायालयों द्वारा, जहां कि पक्षकार अधिवसित थे, मंजूर किए गए विवाह-विच्छेद विधिमान्य और प्रभावी मानने से अन्यथा कार्यवाही करने के हकदार थे । तदनुसार, उनका निष्कर्ष यह था कि आयरलैण्ड की विधि, पति और उसकी प्रथम पत्नि के बीच विवाह का विघटन करने वाली, इंगलैण्ड के न्यायाल द्वारा सुनाई गई विघटन की डिक्री का विधिमान्यता को स्वीकार करती थी और पति एवं अर्जीदार के बी आयरलैण्ड में अनुष्ठित विवाह की विधिमान्यता को भी स्वीकार करती थी । तदनुसार, पत्नी की अर्जी खारि कर दी गई।

1. **ब्रीन** बनाम **ब्रीन**, (1964) प्रोबेट 144 ।
2. (1961) 232 ला टाइम्स 15, 16 में टिप्पण "कान्फिलक्ट आफ लाज—रिकागनीशन आफ इंगलिश डाइवोर्स" देखिए।
3. **मायो-पैरट** बनाम **मायो-पैरट**, (1958) आइ० आर० 336 ।

1.29 मेफील्ड बनाम मेफील्ड[1] में इस विषय की जटिलता का एक और दृष्टान्त दिया जा सकता है, जिनमें कि पति ने जो कि अधिवसित अंग्रेज था, जर्मनी में विवाह-विच्छेद के लिए कार्यवाही की थी, जहां उसकी पत्नी, जो कि जर्मन राष्ट्रिक थी, निवास करती थी। जर्मन न्यायालय द्वारा उसे विवाह-विच्छेद की मंजूरी दे दी जाने के पश्चात्, उसने इंगलैण्ड के न्यायालयों में इस घोषणा के लिए अर्जी फाइल की कि जर्मन डिक्री विधिमान्य है और उसे इंगलैण्ड की विधि में मान्यता दी जानी चाहिए। यहां हमारा सम्बन्ध मामले के वास्तविक विनिश्चय से नहीं है, किन्तु यह मामला यहां सिर्फ यह बताने के लिए उल्लिखित किया गया है कि घोषणा प्राप्त करने के लिए कैसे अवसर उपस्थित हो सकता है।

VI मान्यता के कुछ पहलू

1.30 मान्यता के प्रभाव को समझने के लिए यह वांछनीय है कि उसके कतिपय सैद्धान्तिक पहलुओं के प्रति निर्देश किया जाए। किसी विदेशी निर्णय को (तुरन्त या वाद लाने पर) प्रवर्तित करके या उसे "पूर्वन्याय"[2] माना जाकर मान्यता दी जा सकती है। मान्यता और प्रवर्तन ।

किसी निर्णय को मान्यता में, उसे पूर्वन्याय मानने पर, निम्नलिखित बातें सम्मिलित हो सकती हैं :

(क) वादी के अनुरोध पर मूल वाद हेतुक का इस बात के फलस्वरूप कि वादी के लिए विदेशी निर्णय में उसका विलयन हो गया है, पुनः विचारण करने से इन्कार; (वादी केवल निष्पादन के लिए प्रार्थना कर सकता है);

(ख) वादी के अनुरोध पर मूल वाद हेतुक का, विदेशी निर्णय द्वारा स्थापित वर्जन के फलस्वरूप पुनः विचारण करने से इन्कार;

(ग) उस वाद में, जिसके परिणामस्वरूप विदेशी निर्णय हुआ है, मुकदमा लड़ गए उन प्रश्नगत तथ्य या विधि प्रश्नों का सांपार्श्विक निबंध के परिणामस्वरूप पुनःविचारण करने से इन्कार[3]; और

(घ) विदेशी निर्णय द्वारा घोषित प्रास्थिति की स्वीकृति।

उपर्युक्त (क) और (ख) के अधीन इन्कार, पूर्वन्याय के उस पहलू पर आधारित है जिसे कि बहुधा "विलयन" के रूप में वर्णित किया जाता है। (ग) के अधीन इन्कार सम्पूर्ण वाद हेतुक से संबंधित नहीं होता है, अपितु विशिष्ट प्रश्नों पर पुनः मुकदमा करने से संबंधित होता है। जब कि प्रवर्ग (क), (ख) और (ग) केवल पक्षकारों और उनके संसर्गियों के बीच ही प्रवृत्त हैं, प्रवर्ग (घ) परव्यक्तियों के सम्बन्ध में भी लागू होता है।

VII कार्यवाहियों की प्रकृति और मान्यता के सिद्धांत

1.31 हम यहां यह उल्लेख कर सकते हैं उन कार्यवाहियों की प्रकृति पर, जिनमें मान्यता का प्रश्न विचारार्थ उपस्थित हो सकता है, कोई विशिष्ट निर्बन्धन के नहीं है। प्रश्न प्रत्यक्षतः पक्षकारों के बीच आ सकता है। अथवा वह पर-व्यक्तियों के बीच उठ सकता है। इसके अतिरिक्त, इस घोषणा के लिए प्रार्थना की जा सकती है कि विवाह-विच्छेद विधिमान्य है; या यह प्रार्थना की जा सकती है कि विवाह-विच्छेद शून्य घोषित कर दिया जाए। स्वयं कार्यवाहियां विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। एक पक्षकार विदेश में मंजूर किए गए विवाह-विच्छेद के आधार पर पुनः विवाह कर सकता है और तब विरोधी पक्षकार दूसरा विवाह शून्य घोषित कराने के लिए कार्यवाहियां प्रारम्भ कर सकता है, या पुनर्विवाह करने वाले पक्षकार को द्विपत्नीत्व के अपराध के लिए अभियोजित करने के हेतु समुचित उपाय कर सकता है। अथवा विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता का प्रश्न प्रसंगवश उठ सकता है,—उदाहरणार्थ, जहां कि विवाह के पक्षकार, जो विदेश में किए गए विवाह-विच्छेद द्वारा विच्छिन्न विवाह अभिकथित हैं, भरणपोषण की मंजूरी के लिए किसी वाद या अर्जी में विरोधी पक्षकारों के रूप में प्रस्तुत होते हैं, वहां तर्क यह दिया जाता है कि पूर्व विवाह अस्तित्वयुक्त है और उसे विदेशी न्यायालय द्वारा विधिमान्य रूप से विघटित नहीं किया गया है जिससे कि अर्जीदार पति या पत्नी का भरणपोषण करने की बाध्यता, जो कि विवाह द्वारा सृजित हुई थी, बनी रहती है। कार्यवाहियों की प्रकृति ।

1. मेफिल्ड बनाम मेफिल्ड (1969) 2 डब्लू एल० एन० 1002।
2. स्काट, "कोलेट्रल एस्टापल बाई जजमेंट", (1942) 56 हारवर्ड एल० रिव्यू० देखिए।
3. नोट, (1948) 57 येल एल० जे० 339।

मान्यता का सिद्धान्त

1.32 विदेशी निर्णयों की मान्यता के विभिन्न सिद्धान्त हैं ।

जब स्टोरो ने 1834 में विधि संबंध पर अपनी पुस्तक लिखी तो उसने देखा कि विदेशी शासक के "अन्तिम दंडादेश"[1] के लिए वेटल के विचार का कामन ला न्यायालयों द्वारा महाद्वीपीय यूरोप के न्यायशास्त्र की तुलना में अधिक एकरूपता से पालन किया गया था । तथापि उसने मुख्य न्यायाधिपति मार्शल[2] के दृष्टिकोण का अनुसरण करना पसन्द किया, जिन्होंने संभवतः सिविल विधि तर्क पद्धति को अपनाते हुए, विदेशी निर्णय को हेतुक और पक्षकारों के ऊपर न्यायालय की "विधि-पूर्ण" अधिकारिता के अधीन रखा था[3] । उनके अनुसार, और अनुज्ञेय संवीक्षा का प्रविषय इस बात के अनुसार भिन्न हो सकता है कि निर्णय "सार्वजनिक था या व्यतिबंधी । स्टोरों का विचार था कि "सार्वजनिक निर्णय में सार्वभौमिक निश्चायकता[4] होनी चाहिए । दूसरी ओर, "अंतर्राष्ट्रीय न्याय"[5] पर आधारित सुभिन्नता के अधीन व्यक्तिसम्बन्धी निर्णयों की (यद्यपि मुकदमा हारने वाले वादी द्वारा कोई नया वाद लाने का पूर्वन्याय के रूप में पूर्ण वर्जन था) यदि उनके बारे में प्रवर्तमान वादी[6] द्वारा वाद लाया गया हो तो "गणागुण" की बाबत परीक्षा की जा सकती थी , क्योंकि विदेशी निर्णय का निष्पादन करने में न्यायालय "शिष्टाचार के सिद्धान्तों पर" कार्य करता है, और इसलिए उसे उस शिष्टाचार के निबन्धनों और परिसीमाओं को विहित करने का अधिकार होता है" । किन्तु यह प्रश्न अनिर्धारित रहता है कि किसी विदेशी निर्णय को, दावों[8] का प्रथमदृष्टया साक्ष्य माने जाते हुए भी कहां तक "अधिक्षिप्त" किया जा सकता है ।

लार्ड बोटिंथम ने एक बार यह अभिनिर्धारित किया था[9] "कि विदेशों में दिए गए निर्णयों और दंडादेशों को मान्यता न देना अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध है, क्योंकि किसी एक राज्य को दूसरे के निर्णय को उलटने का क्या अधिकार है ?"

ईसाई जाति में कितनी संभ्रान्ति पैदा हो जाएगी, यदि विदेशों में हमारे प्रति ऐसा ही व्यवहार किया जाएगा और वहां हमारे दण्डादेशों को कोई मान्यता नहीं दी जाएगी ।"

शिष्टाचार और अन्तर्राष्ट्रीय विधि के इन सिद्धान्तों के अतिरिक्त, बहुत से अन्य सिद्धान्त प्रस्तुत किए गए हैं—निहित अधिकारों का सिद्धान्त (विदेशी निर्णय पक्षकारों के बीच विधिक बाध्यता का सृजन करता है), सामंजस्य का सिद्धान्त और इसी प्रकार का अन्य सिद्धान्त ।

VIII. इतिहास

इंगलैंड में मान्यता का इतिहास ।

1.33 इस प्रकार, मान्यता के लिए सैद्धान्तिक आधार विवादास्पद रहे हैं । अब हम कतिपय ऐतिहासिक पहलुओं की ओर ध्यान दें । हो सकता है कि कतिपय विशिष्ट न्यायिक कार्यवाहियों को पहले[10] मान्यता दी गई हो, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि——इंगलैंड के न्यायालयों ने विदेशी निर्णयों का प्रवर्तन 17वीं शताब्दी 11—12

1. स्टोरो, कनफ्लिक्ट आफ लाज ; 1934 ।
2. रोज बनाम हिमाली, (1808) 4 क्रेन्च (8 यू० एस०) 240, 269 ।
3. स्टोरो, 492 ।
4. स्टोरो 597 । विलियम्स बनाम आर्मंपिड, (1813) 7 क्रेन्च (11 यू० एस०) 123; रूपोलियो बनाम डायरो 2, डाल०, 2 एस० एउ० 231 (1775) देखिए । बाद के मामले के लिए, कैनस बनाम बोथ, 14 हाउ० (55 यू०एस०) 399 (1852) देखिए ।
5. स्टोरो, 497 ।
6. स्टोरो, 497, स्मिथ बनाम लेविस, 3 जान, 157, 168 (एन०वाई० 1808) भी देखिए, जिसमें मु० न्या० कैन्ट ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि पर सर्वाधिक मान्य विधिवेत्ताओं की रायों पर निर्भर किया था ।
7. स्टोरो, 497 ।
8. स्टोरो, 508 ।
9. कैनेडी बनाम अर्ल आफ कैसेलस, 2 स्वान्स 313, में उद्धृत उसकी पाण्डुलिपि से एक नोट में, जैसा कि वह विस्काउन्ट बाल्डेन द्वारा बाल्वेसो के मामले (1927) ए०सी० 641, 659 में उद्धृत किया गया है ।
10. सैक, कान्फिल्क्ट आफ लाज इन दि हिस्ट्री आफ इंगलिश ला "पुस्तक ला : सेंचुरी आफ प्रोग्रेस 1835-1935" में जिल्द 3, पृष्ठ 342-382 पर ।
11. न्यूलेंड बनाम हार्सरन (1681) 23 इंग्लिश रिपोर्टस 275 (टिप्पण और हासवर्थ ; हिस्ट्री आफ इंग्लिश ला, खण्ड II, पृष्ठ 269-270 देखिए) ।
12. कैनेडी बनाम कैसीलिस, (1878) 2 स्वान्स 313, 326 ; 36 इ०आर० 635, 640 ; रोच बनाम गरयान (1748), वैस सी, 157, 159 ; 27 एस०आर० 954, 955 भी देखिए । अमेरिका में भी इस विचार को समर्थन मिला ; रोज बनाम हिमेलि, 8 यू० एस० (4 क्रेन्च) 240 ; 2 एल०एड० 608 (1808) देखिए ।

में कभी आरम्भ किया। 17वीं शताब्दी में इंगलैंड के न्यायालयों ने विनिश्चय किया "कि विदेशों में दिए गए निर्णयों और दंडादेशों को मान्यता न देना अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध है"[1]।

16वीं शती के मध्य में प्राइज न्यायालय के न्यायाधीश जोनकिन्स ने इस बारे में कि राष्ट्रों की विधि अन्तर्राष्ट्रीय विधि क्या है यह कहा था कि यद्यपि यह सिविल इम्पीरियल ला नहीं है किन्तु "उन यूरोपीय सरकारों के मध्य साधारणतया स्वीकृत रूढ़ियां हैं जो कि अपने न्याय, शौर्य और सभ्यता के लिए[1] सर्वाधिक विख्यात थीं"। किन्तु इस बारे में जो एक अपेक्षा अधिकथित की गई थी वह यह थी कि विदेशी न्यायालय को "समुचित अधिकारिता[2]" अवैश्य रही होनी चाहिए। यह संकेत किया गया है कि आरम्भ में कोई विनिर्दिष्ट अधिकारिता संबंधी अपेक्षाएं नहीं थीं। विदेशी न्यायालय से केवल यह अपेक्षा की जाती थी कि वह नैसर्गिक न्याय के प्रारम्भिक आदेशों का अनुपालन करे। किन्तु 19वीं सदी में बाध्यता या "निहित अधिकारों" के सिद्धांत[3] को स्वीकार कर लिए जाने से अधिकारिता सम्बन्धी अपेक्षाओं ने स्थायी रूप धारण कर लिया।

1.34 इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि 1845 तक में, प्रतिवादी के पक्ष में विदेशी निर्णय, यदि वह अन्तिम और निश्चायक था, तो उसी मामले[4] के लिए इंगलैंड में कार्रवाई के लिए पर्याप्त प्रतिरक्षा माना जाता था।

पश्चात्‌वर्ती विकास क्रम इस प्रकार थे—(i) कानूनी, विशेष रूप से धनीय निर्णयों के संबंध में, और (ii) न्यायिक, विशेष रूप से विवाह-विच्छेद के संबंध में।

IX. संबंधित मामले

1.35 इस संदर्भ में यह बताना महत्वपूर्ण हो सकता है कि विदेशी निर्णयों की मान्यता की समस्या, कुछ हद तक, विदेशी न्यायालयों की अधिकारिता की समस्या से सम्बन्धित है। इस दृष्टि से, कि भारत में न्यायालय विदेशी निर्णयों को मान्यता दे सके, इस प्रश्न पर विचार करना सुसंगत होगा कि विदेशी निर्णय अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ में, अधिकारिता रखने वाले न्यायालय द्वारा सुनाया गया था, और—न्या० राइट[5] के शब्दों में ऐसे अर्थ में कि सामान्य न्यायशास्त्र और साधारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि और प्रथा के अनुरूप अन्य राज्यों के न्यायालय उसके निर्णयों को आबद्धकर मानेंगे। विदेशी डिक्रियों को मान्यता और विदेशी न्यायालयों की अधिकारिता।

1.35क इस विषय का एक और भी पहलू है। यदि हमारे न्यायालय इस बात पर जोर दें कि विदेशी निर्णय सामान्य न्यायशास्त्र और साधारण अन्तर्राष्ट्रीय विधि और प्रथा के अनुरूप इसलिए होना चाहिए जिससे कि हम विदेशी निर्णय को निदर्शक मान सकें; तो हमारे अपने न्यायालयों को भी, मोटे तौर पर, सामान्य न्यायशास्त्र और साधारण, अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुरूप आधार पर अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए। पारस्परिकता का पहलू।

हम इस पहलू पर बाद में पुनः[6] विचार करेंगे।

1.36 इस प्रश्न में ये विचार यह दर्शित करने के लिए प्रकट किए गए हैं कि उन सिद्धान्तों की चर्चा करना किस प्रकार विसंगत नहीं है, जिन पर भारतीय विधान के अधीन, भारतीय न्यायालय विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण की मंजूरी देने के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए सक्षम माने गए हैं। यद्यपि विधि वैषम्य के क्षेत्र से संबंधित नियम देशीय विधि में जन्म लेते हैं किन्तु उनका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय होता है। उन सिद्धांतों की चर्चा की सुसंगति जिन पर भारतीय न्यायालय अधिकारिता का प्रयोग करते हैं।

1.37 इस अध्याय के समाप्त करने से पूर्व हम यह स्पष्ट कर दें कि यद्यपि भारतीय विधान में वैवाहिक अनुतोष से संबंधित पद "न्यायिक पृथक्करण" है, तो भी हम इस रिपोर्ट में "विधिक पृथक्करण" पद का प्रयोग पहले तो इसलिए कर रहे हैं कि उस पद का भारत से बाहर बहुधा उपयोग किया गया है और दूसरे इसलिए कि "विधिक पृथक्करण" ऐसा पद है कि जिसके अन्तर्गत पारस्परिक सहमति से किया गया पृथक्करण भी आ जाएगा। "विधिक पृथक्करण" पद का प्रयोग क्यों किया गया है।

1. होल्ड्सवर्थ एच०ई०एल०, खण्ड 3, पृ० 654।
2. (क) एक्स बनाम ग्रोविस, (1749) 1 वैन, 298; 27 एस० आर० 1043।
   (ख) एस० पी० आयलियन, (1795) 2 वैन० जून, 587; 30ई०आर० 790।
   (ग) बुकानन बनाम रुकर, (1908) 9 ईस्ट 192; 103 एम०आर० 546।
3. आगे पैरा 1.63।
4. हिकार्डे बनाम गारशियस, (1845) 12 सी०एल० एण्ड एफ० 368, 406।
5. टर्नबाल बनाम वाकर, (1912) 69 टाइम्स ला रिपोर्टस, 707 (न्या० राइट)।
6. आगे अध्याय 12, (पारस्परिकता) देखिए।

अध्याय 2

मान्यता के विषय

अधिवास राष्ट्रीयता-निवास

I. प्रारम्भिक

प्रारंभिक । 2.1 इस प्रक्रम पर, विवाह-विच्छेद और विधिक पृथक्करण की मान्यता के सम्बन्ध में संभव विषयों के बारे में कतिपय साधारण संप्रेक्षण करना सुविधाजनक होगा ।

संयोजी तत्व । 2.2 किसी निर्णय की मान्यता से अनिवार्यतः किसी संयोजी तत्व की मान्यता अभिप्रेत है । संभव संयोजी तत्वों को विधि वैषम्य के अन्तर्गत विभिन्न विचारणाओं के प्रति निर्देश से वर्गीकृत किया जा सकता है, जैसे[1] कि —

(क) अधिवास;

(ख) निवास स्थान जिससे पुनः अभिप्रेत हो सकता है

(i) स्थायी निवास-स्थान,

(ii) आभ्यासिक निवास-स्थान,

(iii) साधारण निवास-स्थान, या

(iv) किसी समय विशेषकर मात्र निवास-स्थान ;

(ग) विधिक सम्बन्ध की स्थिति;

(घ) विधिक आचरण का प्रारम्भ ;

(ङ) राष्ट्रिकता। इनमें से कुछ पर हम चर्चा करेंगे, जिनका कि वर्तमान संदर्भ में व्यावहारिक महत्व है।

स्वीय विधि । 2.3 प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के साधारणतया स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार, अधिकांश राज्यों के न्यायालय वैयक्तिक परिस्थिति की बातों और उससे सम्बन्धित विषयों (विवाह, विवाह-विच्छेद, मृत्यु पर सम्पत्ति का न्यागमन आदि) का विनिश्चय पक्षकारों[2] की "स्वीय" विधि लागू कर के करेंगे । कामन ला पर आधारित विधि पद्धति वाले राज्यों में यह "स्वीय विधि" अधिवास वह स्थान जहां कि सम्बन्धित व्यक्ति का अपना स्थायी घर है, या समुचित समय पर, था[3] की विधि होगी किन्तु सिविल विधि पद्धतियों में स्वीय विधि अक्सर राष्ट्रिकता की अवस्था की विधि होती है।

प्रभुता के दो पहलू । 2.4 राज्य की प्रभुसत्ता दो प्रकार से अभिव्यक्त होती है : (क) उसकी व्यक्तिक शक्ति के रूप में, जिसके द्वारा वह अपने राष्ट्रिकों के नाम पर नियंत्रण करती है ; (ख) उसकी राज्यक्षेत्रीय प्रभुता में, जिसके द्वारा वह अपने राज्यक्षेत्र पर शक्ति का प्रयोग करती है ।

विवाह विषयक मामलों में अधिकारिता की कसौटी के रूप में अधिवास का सिद्धान्त दूसरे पहलू के महत्व से अधिक सम्बन्धित है, जब कि राष्ट्रिकता का सिद्धान्त प्रथम पहलू को अधिक महत्व देता है।

किन्तु इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि राष्ट्रिकता की कसौटी लागू करने का संभव प्रभाव, महाद्वीपीय देशों में, विभिन्न विशेष सिद्धान्तों के लागू होने के कारण, बहुत मन्द हो जाता है इन सिद्धान्तों में प्रमुख लोकनीति (लोकादेश) का सिद्धान्त है । सम्यक् अनुक्रम में हम लोकनीति और विवाह-विच्छेद की डिक्रियों की मान्यता से उसके सम्बन्ध की परीक्षा करेंगे ।

1. यह सूची केवल निदर्शनात्मक है ।
2. एतरेन्सस्विध, कनफ्लिक्ट आफ लाज (1962) पृ० 3721.
3. गुडरिच, कनफ्लिक्ट आफ लाज, चतुर्थ संस्करण पृ० 32-381.

II. अधिवास—सामान्य धारणा

2.5 मान्यता के विनिर्दिष्ट विषयों पर आते हुए हम अधिवास से आरम्भ कर सकते हैं। इंगलैंड की परम्परागत विधि के अनुसार, किसी विदेशी न्यायालय द्वारा मंजूर किए गए विवाह-विच्छेद की मान्यता ऐसे मामलों तक सीमित थीं जहां दोनों पक्षकार उस विदेश में अधिवसित थे। इस कठोर सिद्धान्त में बाद में कतिपय उपान्तर किए गए या प्रतिबन्ध लगाए गए। किन्तु इसके बारे में हम उचित स्थान पर चर्चा करेंगे[1]। अधिवास।

2.5क यह शब्द लेटिन में डोमिसिलियम है जो कि डोमस शब्द से व्युत्पन्न हुआ है और जिसका अर्थ है घर। इस शब्द की यथार्थ विधिक परिभाषा ने विधिवेत्ताओं के लिए पर्याप्त कठिनाई उत्पन्न की है और इसकी ऐसी कोई भी एक परिभाषा नहीं है जो कि सर्वसम्मति से स्वीकार की गई हो। इस शब्द के व्युत्पाद।

मोटे तौर पर, अधिवास उस स्थान का द्योतक है जहां कोई व्यक्ति अपना स्थायी घर बनाने का आशय रखता है। अधिवास, जैसा कि लार्ड वैस्टबरी[2] ने कहा है, विधि का एक भाव है। यह विभिन्न विधिक पद्धतियों में भिन्न-भिन्न भावों का द्योतक है। अधिवास प्रमित धारणा नहीं हो सकता। "अधिवास" के घटक के रूप में एनिमस (आशय) पर अत्यधिक जोर दिए जाने से कतिपय कठिनाइयों का जन्म हुआ है जैसा कि बाद में प्रतीत होगा।

भारत में, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम [3] में अधिवास के विषय में व्यापक उपबन्ध है, किन्तु उनका व्याप्ति क्षेत्र और उपयोज्यता सीमित [4] है। अधिवास की संकल्पना भारत के संविधान के अनुच्छेद 5 में उल्लिखित है किन्तु उसकी परिभाषा नहीं की गई है।

2.6 प्रत्येक व्यक्ति का मूल अधिवास होता है जो कि पसंद के अधिवास के अर्जन कर लिए जाने के पश्चात् समाप्त किया जा सकता है। पसंद के अधिवास का त्याग करना मूल अधिवास के त्याग करने से अधिक आसान है। सामान्यतया इंगलैंड की विधि के अनुसार पसंद का अधिवास के समाप्त होने जाने पर और पसंद का दूसरा अधिवास अर्जित करने तक मूल अधिवास पुनरुज्जीवित हो जाता है। इसके अतिरिक्त, इंगलैंड के कामन ला के परम्परागत नियमों के अनुसार, पत्नी का अधिवास साधारणतया पति के अधिवास के अनुसार होता है, किन्तु यह ऐसा नियम है जो कि अब इंगलैंड में कानून[5] द्वारा निराकृत कर दिया गया है। अधिवास के बारे में नियम।

2.7 किसी व्यक्ति का अधिवास विधि द्वारा नियत किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति विधितः सक्षम वयस्क हो, तो वह अपना घर बसा सकता है जिसे कि विधि के अनुसार उसका अधिवास कहा जाएगा। यह अधिवास पसंद का अधिवास [6] भी कहा जाता है किन्तु यह किसी व्यक्ति की स्वतन्त्र "पसंद" का विषय होता है, क्योंकि वह नए अधिवास के अर्जन के लिए विधि की अपेक्षाओं का पालन करता है। यदि उस व्यक्ति के दो घर हों तो विधि यह अवधारित करती है कि उनमें से कौन सा उसका अधिवास है। यदि उसका कोई घर न हो तो विधि किसी विशेष स्थान को, उस विषय में उसकी पसंद का ध्यान न रखते हुए, उसके अधिवास के रूप में अभिहित कर सकती है। किसी व्यक्ति के जन्म के क्षण से ही, विधि उसे अधिवास समनुदेशित कर देती है, जो कि उसका मूल अधिवास कहा जाता है। अवयस्कों, विवाहित स्त्रियों और विधितः अक्षम समझे गए व्यक्तियों को, विधि द्वारा, अधिवास समनुदेशित किया जाता है जिसे कि किसी व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर के तथ्यों द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है। अधिवास के बारे में नियम।

2.8 इस प्रकार, अधिवास की संकपल्ना एक तरफ किसी व्यक्ति और स्थान के बीच ऐसे विधिक संबंध की संकल्पना है जिसका कि विधि द्वारा, न कि व्यक्तियों द्वारा, सृजन किया जाता है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति के जीवन के तत्व अधिवास को गठन करते हैं, क्योंकि विधि का ऐसा उपबन्ध है? विधि अधिवास के घटकों को विहित करती है। यदि यह सच है तो यह आशा की जानी चाहिए कि अधिवास का वास्तविक अपेक्षाएं अर्थात् उसकी परिभाषा, उन प्रयोजनों के अनुसार, जिनके लिए उस शब्द का उपयोग किया गया है, नियमों में फेरफार

1. आगे अध्याय 7 देखिए।
2. बैल बनाम केनेडी, (1868) ला रिपोर्ट 1 एस०सी० एण्ड डिव 307, 320।
3. धारा 5 से 20, भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925।
4. रतनशा बनाम बनर्जी ए० आई० आर० 1938 बाम्बे 238 से तुलना कीजिए।
5. धारा 1, डोमिसाइल एंय मैट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1973 इंगलैंड।
6. रिस्टेटमेन्ट (सेकण्ड) आफ कान्फिलक्ट्स आफ लाज (प्रोपोज्ड आफिशियल ड्राफ्ट, 1967) सेक्शन 15।

किंचित बदल सकती है। यह फेरफार न केवल एक राज्य से दूसरे राज्य में अपितु एक ही राज्य में भी दृष्टिगत हो सकतो है। चूंकि अधिवास एक "करण" संकल्पना है, अतः वह उसी कार्यार्थ उपयुक्त बन जाएगी जिसके लिए उसकी आवश्यकता होती है[1]। यह कल्पनीय है, कि वे न्यायालय, जो कि अधिवास की एकलता के विचार का अनुसरण करने के लिए तात्पर्यित हैं, किसी व्यक्ति का अधिवास एक प्रयोजन के लिए एक स्थान पर और दूसरे प्रयोजन के लिए किसी दूसरे स्थान पर होने का निष्कर्ष निकाल सकते हैं और वस्तुतः विभिन्न न्यायालय किसी व्यक्ति का अधिवास भिन्न-भिन्न स्थानों पर होने को निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

III. अधिवास और विवाह विषयक अधिकारिता

अधिकारिता के संबंध में अधिवास का महत्व।

2.9 विवाह विषयक अधिकारिता के संदर्भ में अधिवास का महत्व प्रिवी कौंसिल द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए ली मैसूरिये[2] में निश्चित रूप से स्थापित किया गया था कि सीलोन के न्यायालयों को विवाह विघटित करने की अधिकारिता तब तक नहीं थी जब तक कि पक्षकार सीलोन में अधिवसित नहीं हो। इस विनिश्चय का यह अर्थ लगाया गया था कि इसमें यह भी विवक्षित था कि इंगलैंड के न्यायालयों को विशेष कानूनी उपबन्धों के न होने पर, विवाह का विघटन करने की अधिकारिता तब तक नहीं होगी जब तक कि पक्षकार इंगलैंड में अधिवसित न हों। विवाह विषयक हेतुकों में अधिकारिता के संबंध में उपबन्ध करने वाले हाल के 1973 के इंगलैंड के ऐक्ट[3] में अब विनिर्दिष्ट रूप से निम्नलिखित उपबन्ध किया गया है :—

"(2) न्यायालय को विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण की कार्यवाहियों को ग्रहण करने की अधिकारिता होगी, यदि (और केवल यदि) विवाह के दोनों पक्षकारों में से कोई—

(क) उस तारीख को, जब कार्यवाहियां आरम्भ की जाती हैं, इंगलैण्ड और वेल्ज में अधिवसित हो; या

(ख) उस तारीख को समाप्त होने वाली एक वर्ष की सम्पूर्ण कालावधि के दौरान इंगलैण्ड और वेल्ज में अभ्यासतः निवासी था।"

एक प्रकार से यह उपबन्ध अधिवास की संकल्पना को, अधिकारिता के लिए आधार के रूप में, विधायी प्रभाव प्रदान करता है, यद्यपि, जैसा कि धारा ही से प्रकट होगा, अब यह अनन्य आधार नहीं रह गया है।

अधिवास।

2.10 अब विवाह-विच्छेद की मान्यता के संबंध में अधिवास पर विचार कर लिया जाए।

अधिवास के आधार पर मान्यता।

2.11 मान्यता का प्रश्न इंगलैण्ड के पूर्वतर मामलों[4] में अन्तर्वलित किया गया था और अधिवास के नियम पर उनका निर्भर करना निःसन्देह ली मैसूरिये[5] के मामले में एक तत्व था।

स्टोरी का दृष्टिकोण।

2.12 जब 1834 में, स्टोरी ने संयुक्त राज्य अमेरिका में अधिवास का नियम बनाया, तो "अधिवास का राज्य" वह राज्य होता था जिसके कि पक्षकार निवासी होते थे[6], चाहे वह स्थायी अधिवास[7] हो या सद्भावी[8] "वास्तविक अधिवास"। यही धारणा उनकी पुस्तक के आठवें संस्करण में 1883 में ही प्रकट हो गई थी।[9]

---

1. रोक्स बनाम केनेडी, 219 एफ, सप्ली० 892 (डी०डी०सी० 1963) देखिए।
2. लीं मैसूरिये बनाम ली मैसूरिये (1895), ए० सी० 517 (पी० सी०)।
3. सैक्शन 5(2), डोमिसाइल एंड मैट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1973।
4. (क) रेक्स बनाम लोली रुस एण्ड क्रि०कास०, (1812) 237, 168, इंग्लिश रिम० 779।
   (ख) वारेण्डर बनाम वारेण्डर, (1835) 2 कला०फिन० 438, 6 इंगलिश रिप० 1239 (एच०एल)।
   (ग) डोल्फिन बनाम रोबिन्स, (1859) 7 एच०एल० कास० 390, 11 इंग्लिश 156 (एच०एल०)।
   (घ) शा बनाम कोल्ड, (1868) एल० आर० 3 एच० एल० 55।
   (ङ) हार्वे बनाम कार्नियो, (1882) 8 अपील केसेज 43।
   (च) मानिंग बनाम मानिंग (1871) एल० आर० 2 पी० एण्ड डी० 223।
5. ली मैरीसूये आगे पैरा 2.6।
6. (क) हापकिन्स बनाम हापकिन्स, (1807) 3 मैस, 158;
   (ख) फार्टर बनाम फार्टर, (1810) 6 मैस० 263 स्टोरी द्वारा उद्धृत 189।
7. इनहेबीटेन्ट्स आफ हनोवर बनाम टर्नर, 14 मैस। 227, 231 (1817), स्टोरी द्वारा उद्धृत (1834), 190।
8. बारवर बनाम रुट, (1813) 10 मैस० 260, स्टोरी द्वारा उद्धृत (1834), 190।
9. स्टोरी, कान्फ्लिक्ट आफ लाज, (1883 का 8वां संस्करण), पैरा 230।

2.13 इस संबंध में यह प्रत्यास्मरण करना रुचिकर होगा कि अधिवास का नियम इंगलैंड के आरंभिक मामलों[1] में कैसे आया। इसका इतिहास स्टोरो[2] से प्रारम्भ होता है और स्टोरो को यह नियम मैसाचूसेट्स के प्राचीन विनिश्चयों[3] से मिला था। ये मामले मैसाचूसैट्स स्टैटच्यूट (मस० ऐक्ट्स 1785) के अधीन उत्पन्न हुए थे जिनमें यह उपबन्ध किया गया था कि विवाह-विच्छेद से संबंधित वाद उस देश में लाए जा सकते हैं "जिसमें पक्षकार रहते हैं।" इसका प्रयोजन विवाह-विच्छेद को गवर्नर और कौंसिल के क्षेत्र अधिकार से हटा लेना और न्यायालयों के क्षेत्राधिकार में रखना था, क्योंकि कानून के शब्द इस प्रकार हैं: "इस राज्य की जनता के लिए यह कार्य अत्यन्त महंगा है कि उसे विवाह-विच्छेद के सभी प्रश्नों के विषय में बोस्टन में हाजिर होने के लिए बाध्य किया जाए, जब कि वह कार्य उन काउन्टियों के भीतर ही किया जा सकता है, जिनमें कि पक्षकार रहते हैं।" इंग्लैण्ड के आरंभिक मामले।

यह नियम समुचित रूप से सुविधा की विचरणाओं पर आधारित था और यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि इंगलैंड के न्यायालयों ने इस नियम को तब अपनाया जब उन्हें विवाह-विच्छेद के प्रश्नों पर विचार करना पड़ा।

2.14 कुछ समय तक तो मान्यता के सम्बन्ध में निवास की कसौटी अभिभावी रही, किन्तु वह ली मैसूरिये में विनिश्चय किए जाने के पश्चात् विधि नहीं रह गई। सालवेसेन बनाम एडमिनिस्ट्रेटर आफ आस्ट्रियन प्रापर्टी में, निबोएट के मामले में व्यक्त किए गए बहुमत के दृष्टिकोण को औपचारिक रूप से उलट दिया गया था। "यह प्रतिपादित है कि इंगलैण्ड की विधि विवाह के विघटन की डिक्री देने के लिए अधिवास के न्यायालय की सक्षमता और अनन्य सक्षमता को मान्यता देती है।" साधारण नियम को कतिपय कानूनी उपबंधों द्वारा शिथिल किया गया है। किन्तु कानूनी अपवादों के अध्यधीन रहते हुए, मुख्य नियम अभी तक प्रवर्तमान हैं और इंगलैण्ड के 1971 के ऐक्ट[6] द्वारा उसका निराकरण नहीं किया गया है। अधिवास का दृढ़ता से स्थापित होना।

IV. राष्ट्रिकता

2.15 महाद्वीप के कुछ देशों में न्यायालय राष्ट्रिकता के आधार पर विवाह विषयक अधिकारिता का प्रयोग करते हैं और यह उपधारणा की जा सकती है कि ये देश मान्यता की बाबत, अर्थात् उन देशों की डिक्रियों को मान्यता की बाबत भी, जो कि उन देशों के प्रयोजन के लिए विदेश हैं, वही दृष्टिकोण अपनाते हैं। अतः वे राष्ट्रिकता के आधार पर मंजूर की गई विदेशी डिक्रियों को मान्यता देते हैं। राष्ट्रिकता

2.16 इस संबंध में, फ्रांस का उदाहरण प्रमुख है। फ्रांस की क्रांति और फ्रांस के सिविल कोड के प्रवर्तन से ही उसकी स्वीय विधि का संयोजी तत्व बदल गया है। अधिवास को लेकस् पेट्रिये द्वारा अर्थात् अधिवास को वैयक्तिक संबंधों की बाबत राष्ट्रिकता[7] द्वारा प्रतिस्थापित किया जाकर अप्रतिष्ठित किया गया था। फ्रांस और अन्य देश।

फ्रांस के नियम को सिविल विधि वाले दूसरे देशों में भी अपनाया गया है। सिविल विधि के अधिकांश प्रतिनिधि विधान, उस राज्य की जिसके राष्ट्रिक उसके पक्षकार हैं, विधि की स्थिति को निम्नलिखित एक या दोनों मुद्दों की बाबत विचारगत करते हैं:—

(i) विदेशी राष्ट्रिकों की दशा में अधिकारिता की उपधारणा तब तक नहीं की जाती जब तक कि पक्षकारों की राष्ट्रीय विधि इस अधिकारिता को मान्यता देने के लिए अनुकूल न हो।

(ii) विवाहविच्छेद तब तक मंजूर नहीं किया जाता है जब तक कि वह पक्षकारों के राष्ट्रीय राज्य की आन्तरिक विधि के अनुसार न हो।

---

1. क्या "हैडाक बनाम हैडाक" के विरुद्ध व्यवस्था दी गई है?—(1943) 18 इन्ड० एल० जे०, 165, काक, लोजिकल एण्ड लीगल बैसेज आफ दि कान्फ्लिक्ट आफ लाज (1942), 467, 468 भी देखिए।
2. स्टोरो, कमेन्टरीज आन दि कान्फ्लिक्ट आफ लाज (1834), 228 और आगे।
3. देखिए:—
   (क) रिचर्डसन बनाम रिचर्ड्सन, (1806) 2 मैस० 182।
   (ख) हॉपकिन्स बनाम हॉपकिन्स, (1807) 3 मैस० 158।
   (ग) हनोवर बनाम टर्नर (1817) 14 मैस० 227।
4. सालवेसेन बनाम एडमिनिस्ट्रेटर आफ आस्ट्रियन प्रापर्टी, (1927) ए० सी० 641, 685।
5. डन बनाम सूर्बा, (1955) प्रोबेट 178।
6. आगे 1971 के अधिनियम से सम्बन्धित अध्याय—अध्याय 10—देखिए।
7. आगे पैरा 2.19 भी देखिए।

सैविग्नी का विचार

2.17 किन्तु यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि राष्ट्रिकता की कसौटी का यूरोप में भी, सदैव समर्थन नहीं किया गया है। विधि वैषम्यों की बाबत लेखकों और न्यायालयों द्वारा दोनों की विभिन्न प्रकार की रायों की ओर ध्यान न देते हुए, सैविग्नी ने जिस पर भी यह विचार किया कि विधि के इस क्षेत्र की समस्याओं से जनसामान्य के असाधारण और सक्रिय संबंध होने से विधिक अवबोध और विधिक जीवन में सार्वभौमिक समानता का विकास होगा। आगे का सुझाव यह था कि राष्ट्रिकता के सिद्धान्त को, जो कि उस समय महत्व प्राप्त कर रहा था, ऐसे विषय की बाबत प्रभाव नहीं डाल पाएगा जिसकी प्रकृति में विभिन्न राष्ट्रों के किसी मान्य समुदाय की राष्ट्रीय विधियों के वैषम्य का समाधान अन्तर्वलित है। यह समान रूप से सैविग्नी के अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण [1] को प्रतिबिम्बित करता है।

किन्तु सैविग्नी के ये पूर्वानुमान शीघ्र ही विफल हो गए। सैविग्नी के लिखने के दो वर्ष के पश्चात् राष्ट्रिकता के सिद्धान्त को, जिसने कि अपनी अतिरंजना में पिछली शताब्दी के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था में इतना योगदान किया है, मैनसिनो द्वारा राष्ट्रों की विधि के मौलिक सिद्धान्त के रूप में उद्घोषित किया गया और वह शीघ्र ही महाद्वीपीय यूरोप [2] में विधान निर्माण का सुभिन्न आधार बन गया।

ब्राजी कोड में उपबन्ध।

2.18 यूरोपी देशों के अतिरिक्त, कतिपय अन्य देशों में राष्ट्रिकता एक विधिमान्य कसौटी है; उदाहरणार्थ ब्राजीलियन कोड [3] के आर्टिकल 35 के अनुसार, विवाह के वैयक्तिक परिणामों का अवधारण पति और पत्नी के सामान्य "आभ्यासिक निवास स्थान" को विधि द्वारा किया जाता है; किन्तु ब्राजील की विधि उन पर इस तरह लागू होती है मानों वह ब्राजील का नागरिक या अधिवासी हो।

V. राष्ट्रिकता-इतिहास

इतिहास।

2.19 इस प्रक्रम में, विधि वैषम्य के संदर्भ में राष्ट्रिकता का संक्षिप्त इतिहास रुचिकर होगा। स्वीय विधि के आधार के रूप में राष्ट्रिकता कोड नेपोलियन [4] से अधिक पुरानी नहीं है, और उसने केवल मैनसिनो के समय से ही, सिविल विधि क्षेत्र के बहुत से देशों में प्रमुखता प्राप्त की है। उस समय से, इन देशों में राष्ट्रिकता की धारणा संकल्पना का विश्लेषण विधि वैषम्य [5] के सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषयों में से है।

दूसरी ओर, सिविल विधि वाले बहुत से अन्य देशों के समान कामनवेल्थ और यूनाइटेड स्टेट्स ने राष्ट्रिकता की तुलनात्मक रूप से नई धारणा से पृथक् अधिवास के पुराने नियम का अनुसरण किया है।

अंग्रेजी भाषी जगत के देशों के बीच भी, पसंद के अधिवास और विधि के प्रवर्तन द्वारा अधिवास की तुलना में, जो कि अकेले ही संयुक्त राज्य अमरीका में सुसंगत है; उद्भव के अधिवास [6] पर इंगलैण्ड में लगातार जोर दिए जाने से महत्वपूर्ण अन्तर को जन्म दे दिया गया है।

आधुनिक प्रवृत्ति।

2.20 हाल ही की अन्तर्राष्ट्रीय संधियों में "अधिवास" के सिद्धान्त को उल्लेखनीय प्रगति प्राप्त हुई है। कोडिगो बुस्टामान्टे [7] ने स्वीय विधि को विनिर्दिष्ट न करने की कन्वेन्शन की सामान्य नीति की तुलना में और ब्राजील के द्वारा किए गए विरोध के होते हुए भी, जहां कि उस समय राष्ट्रिकता के सिद्धान्तों [8] को अपनाया गया था, विवाह विषयक अधिवास पर होने वाले विवाह-विच्छेद के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अधिकारिता की उद्घोषणा की। निर्णयों के प्रवर्तन की बाबत 3 जून, 1900 की फ्रांस-इटली संधि (आर्टिकल ii, पार्ट i) अधिवास के न्यायालय क विनिश्चयों के लिए अथवा इन विनिश्चयों के न होने की दशा में, प्रास्थिति के विषयों को अपवर्जित किए बिना, प्रतिवादी के निवास के आधार पर दिए गए विनिश्चयों के लिए मान्यता प्राप्त की, और अन्य यूरोपीयन संधियों [9] में इस बात के होते हुए भी वही युक्तियां अपनाई गई है कि सभी अन्तर्ग्रस्त देश राष्ट्रिकता सिद्धान्त के परम्परागत अनुयायी हैं।

---

1. राबेल की कम्पेरेटिव कान्फिलक्ट आफ लाज (1958) खंड 1, में प्रोफेसर एन्टेमा प्राक्कथन, पृ० 16।
2. राबेल की कम्पेरेटिव कान्फिलक्ट आफ लाज (1958), खण्ड 1 में प्रोफेसर यन्टेमा, प्राक्कथन, पृ० 26।
3. आर्टिकल 35, ब्राजीलियन कोड ओन प्राइवेट इन्टरनेशनल ला; डी० नोवा, "डवलपमेंट आफ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला" (1964) 13 अमेरिकन जर्नल आफ कम्पेरेटिव ला 452, 561।
4. ऊपर पैरा 2.16 से तुलना कीजिए।
5. राबेल कम्पेरेटिव कान्फिलक्ट आफ लाज, खंड 1, पृ० 161-172 विभिन्न मूलाधार (परम्परा, राजनीति, अर्थशास्त्र, व्यावहारिकता) की चर्चा की गई है और पृष्ठ 171 पर राष्ट्रिकता सिद्धान्त की कमियां बताई गई हैं।
6. राबेल : कम्पेरेटिव कान्फिलक्ट आफ लाज, (1958), खंड 1, पृष्ठ 118।
7. आर्टिकल 52, बूस्टामान्टे कोड।
8. राबेल; कम्पेरेटिव कॉन्फिलक्ट आफ लाज (1958), खण्ड 1, पृष्ठ 532।
9. (1934) 153 लीग आफ नेशन्स, ट्रीटो सीरीज, पृ० 135, 141।

2.21 "स्कैण्डोनेवियई यूनियन"[1] में, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क, फिन्लैण्ड और आइसलैण्ड द्वारा हस्ताक्षरित कुटुम्ब विधि[2] के बारे में, राष्ट्रिकता सिद्धांत व्यक्ति के अधिवास को विधि के प्रति निर्देश से प्रतिस्थापित किया गया है, व्यक्ति के अधिवास की विधि इस बात को मान्यता देती है कि किसी व्यक्ति का जीवन मुख्यतः उसके अधिवास[3] के देश के चतुर्दिक केन्द्रित रहता है। स्कैण्डोनेवियाई विधि

2.22 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए[4] कि विधि वैषम्य की बाबत वैनेजुएला के प्रारूप की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि राष्ट्रिकता की स्वीय विधि के मामलों में संयोजी तत्व के रूप में अधिवास से प्रतिस्थापित कर दिया गया है। यह परिवर्तन उस बराबर होने वाली समर्थन की हानि पर जोर देता है, जोकि लैक्स मैट्रियास के विचार को युद्ध के बाद से, विधायी कर्मशालाओं और विद्वतः क्षेत्रों, दोनों में उठानी पड़ी है[5]। वैनेजुएला का प्रारूप।

2.23 यह कहा गया[6] है कि अधिकारिता और विधि के चयन के लिए कसौटी के रूप में राष्ट्रिकता के इस संकट का अधिक महत्वपूर्ण चिह्न वह चुनौती और तीव्र प्रतियोगिता है जिसका वह हाल ही में हेग में हुई कान्फ्रेन्स के "आभ्यासिक निवास"[7] से सामना कर रही है।

कहा जाता है कि "आभ्यासिक निवास" अन्तर्राष्ट्रीय उपयोगार्थ आधुनिक रूप में अधिवास है।

2.24 1960 में, उन वाद-विवादों के दौरान जो कि संरक्षता[8] के विषय पर कान्फ्रेंस के नवें सत्र में, हुए, और 1963 में, जबकि विशेषज्ञों के एक ग्रुप ने दत्तक ग्रहण[9] पर प्रारंभिक प्रारूप तैयार किया था, और पुनः 1964 में, कान्फ्रेन्स के 10वें सत्र में जब अन्तर्राष्ट्रीय दत्तक ग्रहण पर एक पाठ पर सहमति हुई थी, न्यायालयों की सक्षमता और राष्ट्रिकता वाले देश की विधि तथा न्यायालयों की सक्षमता एवं आभ्यासिक निवास वाले देश की विधि के बोध एक प्रकार का सन्तुलन रखा गया था। किन्तु पैमाने बहुधा बाद वाले के पक्ष में झुके। अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन आभ्यासिक निवास की उभरने वाली कसौटी होना।

VI. निवास

2.25 दूसरा पहलू, जिस पर विचार किया जाना है, निवास का पहलू है। भारत में, यह कसौटी विवाह विच्छेद की अधिकारिता के आधार के रूप में प्रवृत्त नहीं है, किन्तु इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 2 का कुछ समय तक यह अर्थ लगाया जाता रहा था कि वह न्यायालयों को, यदि पक्षकार भारत में निवासी थे, विवाह-विच्छेद मंजूर करने के लिए सशक्त करता था। अब उस अधिनियम के अधीन विवाह के विघटन की बाबत यह विधि[10] नहीं है—यद्यपि यह अधिनियम के अधीन अकृतता के रूप में बनी हुई है। निवास

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20 (ग) में और हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 19 में निवास की कसौटी उन विषयों की बाबत, जिनके बारे में उन उपबंधों में चर्चा की गई है, अधिकारिता के प्रयोग के लिए आधार के रूप में आई है। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 19 का विदेशी तत्व वाले मामलों में लागू होना ऐसा विषय है, जिस पर हम बाद में चर्चा[10] करेंगे।

---

1. फरवरी 6, 1931 की कन्वेन्शन आन मैरेज, एडोप्शन एण्ड गार्जियनशिप, 5 हडसन इन्टरनेशनल लैजिसलेशन 877 (1936) नवम्बर 19, 1934 की कन्वेशन आन इनहेरिटेन्स एण्ड सकसेशन 6 हडसन 947 (1937)।
2. जे० पी० निबोएट, प्रोफेसर आफ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला, पैरिस : "टैरिटोरियलिटी इन दि कान्फ्लिक्ट आफ लाज" (1952) 65 हावर्ड ला रिव्यू, 582-583 देखिए।
3. राबेल : कम्पेरेटिव कान्फ्लिक्ट आफ लाज (1958), खण्ड 1, पृष्ठ 33, नोट 85।
4. डी० नोवा : "डैवलपमेंट्स आफ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला", (1964) 13 ए०जे० सी० एल 542, 562।
5. डी० नोवा : "डवलपमेंट्स आफ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला", (1964) 13 ए०जे० सी०एल० 542, 562, आर।
6. डी० नोवा : "डवलपमेंट्स आदि" (1964) 13 ए०जे०सी०एल० आई 542, 560, आर० एच० ग्रोवसन, "कम्पेरेटिव आसपैक्ट्स आफ दि जनरल प्रिंसिपिलज आफ प्राइवेट इंटरनेशनल ला" एकेडमिक डि ड्रायट इन्टरनेशनल, 109, रेकुइल डेस कोर्स (1963), 2 पृष्ठ 68 पर।
7. आगे पैरा 2.30 और उसके आगे।
8. ए०आर०डी० नोवा, "ली IX कान्फ्रेन्स डेल "एजा" 14 डिरिट्टो इन्टरनेशनलस (1960) देखिए 305, 309 पर देखिए।
9. आर०डी० नोवा ii प्रोगेट प्रेलिमिनेर डेल एजा आउल एडोज़ियोन इन्टरनेशनल" (1963) 17 डिरिट्टो इन्टरनेशनेल 199 देखिए।
10. आगे अध्याय 5 देखिए।

आशय का अपेक्षित न होना ।

2.26 निवास से बस जाने का आशय अपेक्षित नहीं होता है । यह बताया गया है[1] किसी व्यक्ति के लिए उसके सिर पर छत का भी होना आवश्यक नहीं है और कोई खानाबदोश ऐसे देश का "निवासी" हो सकता है, जिसके भीतर वह घूम रहा हो ।

निवास का भौतिक तथ्य होना ।

2.27 "निवास" को हमेशा अनिवार्य रूप से भौतिक तथ्य[2] माना गया है । कराधान विधि पर दिए गए हाउस आफ लार्डस्[3-4] के दो विनिश्चयों का मिश्रित प्रभाव यह है कि "मामूली निवास[5]" "गैरमामूली" का उल्टा होता है—कोई निवास जो कि "उस प्रकार का होता है, जिसमें मनुष्य का जीवन सामान्यतया व्यवस्थित हो" (लार्ड वारिंगटन)—किसी मनुष्य के जीवन के उस क्रम का······भाग, जो स्वेच्छया और कतिपय प्रयोजनों के लिए (लार्ड समर)—आकस्मिक रूप से नहीं किन्तु उसके जीवन के मामूली अनुक्रम में अपनाया गया हो" । यह किसी विद्वान्[6-7] द्वारा किए गए इस विषय के विश्लेषण से भी स्पष्ट है ।

निवास का अर्थ ।

2.28 भारत में, "निवास" पद का उच्चतम न्यायालय द्वारा मुसम्मात जागीर कौर बनाम जसवंत सिंह[8] में अर्थ किया गया है । वह प्रश्न जो कि विनिश्चय के लिए उठा था, यह था कि "निवास करता हो" शब्दों से और "जहां उसने अन्तिम बार अपनी पत्नी के साथ अन्तिमबार निवास किया" शब्दों का दण्ड प्रक्रिया संहिता[9] की धारा 488(8) में क्या अभिप्राय है जो कि पत्नी को, अन्य बातों के साथ-साथ, सक्षम मजिस्ट्रेट के समक्ष भरण-पोषण के लिए अर्जी फाइल करने का अधिकार देती है । इस मामले पर विचार करते हुए उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया :—

> "क किसी स्थान पर केवल कुछ समय के लिए जाता है और उसका उस स्थान में, जहां वह जाता है, स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से रहने का कोई आशय नहीं है । अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वह उन स्थानों में 'निवास करता है', जहां वह जाता है ।" निर्णय में पहले यह मत भी व्यक्त किया गया था कि "इसको चाहे कोई भी अर्थ दिया जाए, किन्तु एक बात स्पष्ट है और वह यह है कि इसके अन्तर्गत किसी विशिष्ट स्थान में आकस्मिक रूप से ठहरना या वहां कुछ समय के लिए जाना नहीं आता है । संक्षेप में, इस शब्द का अर्थ, अंतिम विश्लेषण में, संदर्भ और किसी विशिष्ट कानून के प्रयोजन पर निर्भर करेगा । इस मामले में, संदर्भ और वर्तमान कानून का प्रयोजन, निश्चित रूप से, अधिवास की धारणा का अर्थ, उसके तकनीकी अर्थ में, करने के लिए विवश नहीं करता है । कानून के प्रयोजन की बेहतर सिद्धि होगी यदि, 'निवास करता हो' शब्दों से यह समझा जाए कि अस्थायी निवास उसके अन्तर्गत आता है ।"

ये कथन लाभकर है क्योंकि ये निवास और अधिवास के बीच प्रभेद बताते हैं ।

VII. मामूली निवास

मामूली निवास ।

2.29 चर्चाधीन प्रश्न से सुसंगत अगला पद "मामूली निवास" है यह ऐसा पद है जो कराधान विधि[10] में मिलता है । मामूली निवास मनुष्य के जीवन के मामूली अनुक्रम में निवास होना चाहिए, न कि अपवाद स्वरूप या आकस्मिक । यहां भी, आशय अपने आप में तात्विक नहीं है, सिवाय वहां तक के जहां कि वह इस बात को उपदर्शित करे कि निवास अपवाद स्वरूप है या आकस्मिक है ।

आभ्यासिक निवास ।

2.30 "आभ्यासिक निवास" निवास से अधिक प्रमित आधार है और इस पर कुछ विस्तार से विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

1. इंटर्नल रेवेन्यू कमिश्नर बनाम लिसाँट, (1928) ए०सी० 234, 244 (वाइकाउन्ट समर) ।
2. रेमसे बनाम लिवरपूल रॉयल इंफरमरी, (1930) ए०सी० 588, 597 (लार्ड मैकमिलन) ।
3. लेवेनवायर बनाम इंटर्नल रेवेन्यू कमिश्नर (1928) ए०सी०, पृष्ठ 225 ।
4. इंटर्नल रेवेन्यू कमिश्नर बनाम लिसाट, (1928) ए०सी० 234, 242, 243, 248 ।
5. आगे पैरा 2.29 भी देखिए ।
6. फार्नवर्थ, 67 में, एस०क्यू०आर० 32, 34 ।
7. फार्नवर्थ, "रेजिडेंस इन दि एंग्लो-अमेरिकन ला" 38 ग्रोशस सोसाइटी ट्रांजेक्शन्स 29 ।
8. मुसम्मात जागीर कौर बनाम जसवंत सिंह, ए०आई०आर० 1963 एस०सी० 1521 ।
9. अब दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 ।
10. ऊपर पैरा 2.27 ।

2.31 "आभ्यासिक निवास" पद का अन्तर्राष्ट्रीय[1] रुप से प्रयोग सर्वप्रथम 1902[2] में किया गया था । इस संकल्पना का प्रयोग लीग आफ नेशन्स, यूनाइटेड नेशन्स और काउन्सिल आफ यूरोप द्वारा प्रायोजित कन्वेंशन में भी किया गया है । इतिहास ।

नोटेबोम के मामले में[3], अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने आभ्यासिक निवास के महत्व पर जोर दिया था । इस मामले में प्रश्न यह था कि क्या लिचटेस्टिन राज्य ऐसे व्यक्ति को राष्ट्रिकता प्रदान कर सकता है जो ग्वाटेमाला में अभ्यासतः निवासी है ।

2.32 "आभ्यासिक निवास" का उपयोग उत्तराधिकार[4], दत्तक-ग्रहण[5], व्यतिरेक[6] और विवाह-विच्छेद तथा विधिक पृथक्करण [7-8-9] से संबंधित इंगलैंड के कानूनों में किया गया है । इंगलैण्ड का उपबन्ध ।

इस संकल्पना की सीमाओं का सिद्धान्ततः समन्वेषण किया गया है[10] ।

2.33 इस पद "आभ्यासिक निवास" के प्रति निदेश से जैसा कि उसका रिकागनिशन आफ डाइवोर्सेस ऐक्ट, 1971 की धारा 3 (1) (ए) प्रयोग किया गया है, न्या० लेन का क्रूसे बनाम चित्तुम[11] में दिया गया निर्णय रुचिकर होगा । हम इसके बारे में बाद में चर्चा करेंगे[12] । हाल का मामला ।

इंडिका बनाम इंडिका[13] में दिया गया निर्णय भी दर्शनीय है जो कि आभ्यासिक निवास की संभव कसौटी स्थापित करता है । उसमें, जैसा कि न्या० ओर्मरोड ने एंजिलो बनाम एंजिलो[14] में कहा था, "प्रत्येक लार्ड महोदय ने इस बाबत बहुत कुछ वही उदार दृष्टिकोण प्रकट किया है कि नया मान्यता नियम क्या होना चाहिए, यद्यपि इसे उन्होंने पूर्णतया भिन्न शब्दों में व्यक्त किया है ।

2.34 क्रुशे बनाम चित्तूम[11] में न्या० लेन ने 1971 के ऐक्ट के प्रति निर्देश से आभ्यासिक निवास के कतिपय लक्षणों के बारे में काउन्सेल द्वारा किए गए निरूपण को स्वीकार किया । वे निरूपण निम्नलिखित थे:

(i) आभ्यासिक निवास "निवास की क्वालिटी न कि निवास की कालावधि" उपदर्शित करता है ।

(ii) "आभ्यासिक निवास" उस निवास के समान है जो सामान्यतया कि "अधिवास" के भाग के रूप में अपेक्षित होता है, यद्यपि आभ्यासिक निवास में अभिप्राय तत्व को, जो कि अधिवास में आवश्यक होता है, कोई आवश्यकता नहीं होती ।

---

1. हेग कन्वेंशन आन गार्जियनशिप (12 जून, 1902), आर्टिकल 2 ।
2. के० लिप्सटीन, दि टैन्थ सैशन आफ "दि हेग कान्फ्रेंस ऑन प्राइवेट इंटरनेशनल ला" (1925) कैम्ब० एल०जे० 224, 225, एन० 3 देखिए ।
3. नोटेबोम केस, (सैकण्ड केज) (1955) आइ०सी०जे० रिपो० 4 : 22 ।
4. धारा 1, विल्स ऐक्ट, 1963 से० ।
5. धारा 11(1) एडाप्शन ऐक्ट, 1968, (हेग कन्वेशन आन एडाप्शन 1964 आ० 1, 2 (बी) का अनुसरण करते हुए ।
6. धारा 7(1), सप्लाई आफ गुड्स (इम्प्लाइड टर्म्स) ऐक्ट, 1973 ।
7. (क) धारा 3(1) (क), रिकोगनिशन आफ डाइवोर्सेस एण्ड लीगल सपरेशन ऐक्ट, 1971 (हेग कन्वेंशन आन रिकोगनिशन 1969, आ० 2, का अनुसरण करते हुए ।
   (ख) डोमिसाइल एण्ड मैट्रीमोनियल प्रोसीडिंग ऐक्ट, 1973, धारा 5(2) ।
8. आगे पैरा 2.33 ।
9. एडमिनिस्ट्रेशन आफ जस्टिस ऐक्ट' 1956' धारा 3(8) और 4 (1) (ए) भी देखिए ।
10. (क) आर० एच० ग्रेवेसन, दि कान्फिलक्ट आफ लाज छठा संस्करण, (1909) पृष्ठ 195, 512 ।
   (ख) के० लिप्सटीन---(1965) कैम्ब० एल० जे० 224, 225, 227 में ।
   (ग) जे ज्लोश, दि एडाप्शन ऐक्ट, 1968 एण्ड "दि कन्फिलक्ट आफ लाज" (1973) 22, आई० सी० एल० क्यू० 109 134-136 ।
   (घ) जे० डी० मैक्लीन और के० डब्ल्यू० पैचेट, "इंगलिश ज्यूरिसडिक्शन इन एडाप्शन" (1970) 19 आई० सी० एल० क्यू० 1 14-16 ।
11. क्रूसे बनाम चित्तुम, (1974) 2 आल इंगलैण्ड रिपोर्टस 940, 942, 943 ।
12. आगे पैरा 2.34 ।
13. इंडिका बनाम इंडिका (1969) 1 ए० सी० ।
14. एंजिलो बनाम एंजिलो (1968) 1 डबलू एल० आर० 401, 403 ।

(iii) मामले में मिसीसिपी डिक्री में का यह वाक्यांश, (जो कि विवाद्य था) कि निवास "वास्तविक और सद्भावी था," वास्तव में इस संदर्भ में आभ्यासिक की परिभाषा करता है और "नियमित शारीरिक उपस्थित" को, जो कि अवश्य हो कुछ समय के लिए अवश्य होना चाहिए" द्योतित करता है ।

(iv) निवास की कतिपय विशेषताएं उसके आभ्यासिक होने की संभावना से नकारती हैं,–उदाहरणार्थ, यदि वह "अस्थायी या गौण प्रकृति का हो" ।

(v) "आभ्यासिक निवास में आशय का अर्थात् निवास करने के आशय का तत्व अपेक्षित होता है" ।

(vi) मामूली निवास आभ्यासिक निवास से इस बात में भिन्न होता है कि "आभ्यासिक निवास मामूली निवास से कुछ अधिक होता है" ।

सादर, यह कथन कर दिया जाए कि इन प्रतिपादनाओं में से कुछ--विशेष रूप से अंतिम की बाबत आगे विचार किए जाने की आवश्यकता हो सकती है ।

आभ्यासिक निवास का अन्य कसौटी से मेल खाना ।

2.35 आभ्यासिक निवास की कसौटी कभी-कभी अन्य कसौटी से मेल खा सकती है । इस प्रकार का एक उदाहरण दिया जा सकता है, यद्यपि वह विवाह विषयक विधि के क्षेत्र से नहीं है । अताउल्लाह के मामले[1] में, सत्तान्तरित राज्यक्षेत्रों के निवासियों की स्थिति के संदर्भ में, कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा यह मत व्यक्त किया गया था :—

"अतः कुछ मामलों में विकल्प अभ्यर्पित राज्यक्षेत्र के निवासियों के पक्ष में एक विकल्प अनुबद्ध किया जाता है और इस प्रकार इस आरोप से बचा लिया जाता है कि निवासी नए शासक को उनकी इच्छा के विरुद्ध सौंपे गए हैं" ।

"विकल्प के निबन्धन प्रत्येक मामले में भिन्न-भिन्न हो सकते हैं, किन्तु लागू किया गया साधारण सिद्धान्त यह रहा है कि कोई व्यक्ति, जो अभ्यर्पित राज्यक्षेत्र में आभ्यासिक निवासी[2] रहा है, 'स्वतः उस राज्य की राष्ट्रिकता अर्जित कर लेता है जिसको राज्यक्षेत्र अन्तरित किया गया है और अभ्यर्पक राज्य की राष्ट्रिकता को वह खो देता है ।" (पृष्ठ 506-ओपनहेम)

"ऊपर निर्दिष्ट सिद्धान्त से, यह सुस्पष्ट हो जाएगा कि कोई व्यक्ति, जो विशिष्ट अभ्यर्पित राज्य-क्षेत्र के भीतर आभ्यासिक निवासी[2] था, 'स्वतः' अभ्यर्पण के परिणामस्वरूप, उस राज्य की राष्ट्रिकता अर्जित कर लेता है, जिसको राज्यक्षेत्र अंतरित किया गया है ।

1. अताउल्लाह बनाम अताउल्लाह, ए० आइ०आर० 1953 कलकत्ता 530, 533 (न्या० आर० पी० मुखर्जी के अनुसार) ।

2. अधोरेखांकन हमारी ओर से किया गया ।

अध्याय 3

न्यायालयों द्वारा लागू की गई विधि

I. प्रारंभिक

3.1 इस अध्याय में, हम संक्षेप में उस विधि की चर्चा करेंगे जोकि उस समय लागू की जाती है, जब कि न्यायालय किसी विवाह का विघटन करता है। इस पहलू पर विचार किया जाना विवाह-विच्छेद को मान्यता देने के प्रश्न से सुसंगत है। अध्याय की परिधि।

3.2 विधि वैषम्य के क्षेत्र में उद्‌भूत होने वाली समस्याओं के बारे में प्राय. तीन प्रश्नों पर विचार-विमर्श किया जाता है,— वे प्रश्न जो प्रायः उठते हैं।

(1) अधिकारिता के आधार

(2) विधि का चयन

(3) मान्यता

साधारण रूप में हमने प्रथम[1] के बारे में चर्चा की है। अब हम दूसरे के बारे में चर्चा करेंगे। इस संदर्भ में विचारार्थ विनिर्दिष्ट प्रश्न यह है कि मान्यता के प्रयोजन के लिए यह कहां तक पूर्वापेक्षित होना चाहिए कि मान्यता देने वाले न्यायालय की विधि विदेशी न्यायालय द्वारा लागू की गई थी।

दूसरे शब्दों में अधिकारिता के अपेक्षित आधार की विद्यमानता की कसौटी (आभ्यासिक निवास, राष्ट्रिकता या अधिवास) के अलावा क्या यह भी आवश्यक होना चाहिए कि विदेशी न्यायालय को उस देश में प्रवृत्त विधि को अवश्य लागू किया होना चाहिए जिसमें कि मान्यता चाही गई है?

3.3 प्रारम्भ में हम, प्रस्तावना के रूप में, यह कह सकते हैं कि भारत में और साथ ही इंगलैंड[2] में और संयुक्त राज्य[2] में विवाह-विच्छेद की बाबत "अधिकारिता सम्बन्धी दृष्टिकोण" और उसके लिए न्यायालय एवं विधि साधारण तौर पर दीर्घकाल से ही स्वीकार किए जा चुके हैं। अतः इसके प्रतिकूल विशेष कानूनी उपबन्धों के अभाव में, यदि कोई भारतीय या इंगलैण्ड का न्यायालय किसी विवाह का विघटन करने के लिए अधिकारिता का प्रयोग करता है, वह, यथास्थिति, भारतीय या इंगलैण्ड की विधि लागू करता है। यह स्थिति राष्ट्रमंडल (कामनवैल्थ) के अन्य देशों में भी इससे भिन्न नहीं है। भारत, इंगलैंड और संयुक्त राज्य अमरीका में स्थिति के बारे में साधारण विवरण।

तथापि, इस विषय पर स्थिति की सैद्धांतिक परीक्षा सहायक हो सकती है। अतः हम इंगलैण्ड की विधि पर चर्चा आरम्भ करने से पूर्व कतिपय महत्वपूर्ण पहलुओं के बारे में विचार करेंगे।

II. विधि का चयन--साधारण पहलू

3.4 जहां किसी संव्यवहार में एक से अधिक राज्यों के साथ की गई संविदाएं अंतर्वलित हैं, वहां संव्यवहार को लागू विधि का अवधारण समस्याएं उत्पन्न कर सकता है। "न्यायालयेतर" तत्व पर कभी-कभी ध्यान दिया जाता है और कभी-कभी नहीं। विधि वैषम्य पर पाठ्य पुस्तकें लेखकों द्वारा किए गए साधारण संप्रेक्षण, इस पहलू पर ध्यान आकर्षित करते हैं; किन्तु उन संप्रेक्षणों में यह अन्तर्हित नहीं है कि न्यायालयेतर तत्व अन्तर्वलित करने वाले प्रत्येक मामले में विदेशी विधि अवश्य लागू की जानी चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर कि विदेशी विधि लागू की जानी चाहिए या नहीं, और यदि हां तो कौन सी विदेशी विधि लागू की जानी चाहिए, वाद हेतुक की प्रकृति, वांछित अनुतोष और बहुत से अन्य तत्वों पर निर्भर करेगा। एक से अधिक राज्यों के साथ संविदाएं अंतर्वलित करने वाले संव्यवहार।

1. ऊपर पैरा 2.19 से 2.35।

2. डी० नोवा "डेवलपमेंटस आफ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला" (1964) 13 अमेरिकन जर्नल आफ कम्पेरेटिव ला।

इसके अतिरिक्त, जहां वांछित अनुतोष कानूनी उपबन्धों के शासित होता है, वहां उन उपबन्धों की उपेक्षा नहीं की जा सकती । यह सुझाव दिया जाता है कि इस बारे में सही दृष्टिकोण यह होगा कि पहले सुसंगत अधिनियमिति का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया जाए यदि इस विषय पर कोई अधिनियमिति हो तो उसकी प्रादेशिक परिधि अवश्य अभिनिश्चित की जाए । इसमें संदेह नहीं कि व्यापक कानूनों की अवपठन की न्यायिक परम्परा है जिससे कि जहां कहीं आवश्यक हो उनकी राज्यक्षेत्रातीत प्रयुक्ति से बचा जा सके । किन्तु वह बात जिस पर कि जोर दिए जाने की आवश्यकता है, यह है कि लागू अधिनियमिति के विषय की पूर्णरूप से उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

यदि इस कार्यवाही से युक्तियुक्त कारणों पर आधारित कोई निष्कर्ष नहीं निकलता है तो इसमें संदेह नहीं कि इस बात की जांच करना विधि संगत होगा कि वाद हेतुक और अनुतोष की प्रकृति और अन्य सुसंगत कारणों को ध्यान में रखते हुए, क्या विधि की किसी अन्य पद्धति की बाबत विचार किया जाना चाहिए ।

प्रत्येक मामले में ऐसा नहीं है कि विदेशी विधि किसी विदेशी तत्व के होने के कारण से ही शासी विधि बन जाती है । किसी देश का न्यायालय अपने ही विधानमण्डल की विधि को लागू करने के लिए तब तक आबद्ध होता है जब तक कि यह न पाया जाए कि प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों द्वारा या कानूनों के अर्थान्वय से संबंधित नियम द्वारा, वह विधि लागू नहीं है ।

3.5 जहां उस विषय पर कोई ऐसा अन्तर्देशीय कानून न हो जिसमें कि विशेष मामले से संबंधित स्पष्ट या विवक्षित प्रादेशित परिधि हो और न्यायालय को न्यायालयेतर तत्व अंतर्वलित करने वाले मामले पर विचार करना पड़ रहा हो, वहां न्यायालय साधारणतया शासी विधि का अवधारण करने के लिए प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धांतों को लागू करता हैं । कोई विदेशी कानून उस समय सुसंगत होगा जब कि वह उस विधिक पद्धति का भाग हो जिसकी विधि उस न्यायालय के विधि चयन नियम के आधार पर लागू है । किन्तु जो कुछ पहले कहा जा चुका है[1] उसकी पुनरावृत्ति करते हुए प्रत्येक मामले में ऐसा नहीं है कि उस स्थल की विधि विदेशी विधि द्वारा प्रतिस्थापित कर दी जाएगी ।

विधि की संभव पद्धतियां ।

3.6 यदि महत्वपूर्ण पद्धतियों का वर्णन किया जाए तो लागू विधि की संभव पद्धतियां निम्नलिखित हैं :—

(क) राष्ट्रिकता की विधि;

(ख) आधुनिक समय में आभ्यासिक निवास में अधिवास की विधि;

(ग) विवाह के अनुष्ठान वाले उस स्थान की विधि जहां विवाह से संबंधित प्रश्न उठता है ;

(घ) उस स्थान की विधि जहां विवाह विषयक अवचार किया गया था ;

(ङ) उस स्थल की विधि ।

उस स्थल के न्यायालय को यह विनिश्चय करना होगा कि क्या उसे सभी विदेशी विधियों की उपेक्षा करते हुए, ऊपर (ङ) में दी गई अपनी विधि पद्धति को लागू करना चाहिए या ऊपर (क) से लेकर (घ) तक में दी गई पद्धतियों में से किसी अन्य विधि पद्धति को लागू मानना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर विभिन्न बातों पर निर्भर करता है ।

विवाह की विधिमान्यता ।

3.7 सर्वप्रथम यह कहा जाना चाहिए कि विवाह-विच्छेद से भिन्न कुछ विषयों पर न्यायालय द्वारा विदेशी विधि पर समुचित विचार किया जा सकता है । उदाहरणार्थ, विवाह की विधिमान्यता के सम्बन्ध में विधि चयन नियम के बारे में स्थिति निम्नलिखित[2] रूप में परिभाषित की गई है ।[3]

"किसी विवाह की औपचारिक विधिमान्यता के लिए उस स्थानीय विधिगत अनुष्ठानों के प्रतिनिर्देश किया जाता है जो कि विवाह की तारीख को विद्यमान समझी गई है, या उस स्थानीय विधिगत

1. ऊपर पैरा 3.4 ।

2. मैंडेस दा कोस्ट्स "दि फोरमेलिटीज आफ मैरिज", पृष्ठ 257 "जो टेम्पोरल डाइमेंशन्स इन दि कन्फिलक्ट आफ लाज" (1962) बी० वाई० बी०, आई० एल० 122 में निर्दिष्ट किया गया है ।

3. देखिए —
(क) एटेमा, "डायसी : एन अमेरिकन कमेन्टरी", 4 इन्टरनेशनल ला क्वार्टरली ।
(ख) राबेल, कन्फिलक्ट आफ लाज (द्वितीय संस्करण, 1960) खण्ड 2 पृ० 235, 236 ।
(ग) जस्टिस होम्स—क्यूबा आर० कम्पनी बनाम कास्बी (1922) यू० एस० 473, 477 (1914) में तथा
(घ) जस्टिस होम्स-वैस्टन यूनियम टेलीग्राफ कम्पनी बनाम ब्राइन (1914) 324 यू० एस० 542, 547 ।

अनुष्ठानों के प्रति निर्देश किया जाता है जो कि उस समय विद्यमान हो जब कि विवाह की विधिमान्यता या तो दूसरा विवाह कर लिए जाने के कारण या इस कारण कि वह विवाद्यक सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा उठाया गया है ।"

3.8 अपकृत्य की बाबत स्थिति यह है कि कभी-कभी विदेशी विधि पर विचार किया जाना होता है। संयुक्त राज्य अमरीका की और अन्य पद्धतियों की बहुत-सी विधियां, ब्रिटिश विधियों को छोड़कर, लेक्स लोसाइ डेलिक्टी कमीसी को अर्थात्, उस देश के विधि संग्रह को जहां अपकृत्य किया गया है । प्राथमिक अध्युपाय और अपकृत्य वाले मामलों में दायित्व के मानदंड के रूप में निर्दिष्ट करती है, ऐसा निःसन्देह उन परिसीमाओं के अधीन रहते हुए किया जाता है जोकि प्रक्रिया और लोक नीति के प्रश्नों के बारे में उस स्थान द्वारा लगाई गई हो । अपकृत्य ।

प्रिंस फिलिप्स बनाम आयर[1] में न्या० विल्स का अनुसरण करते हुए इंगलैण्ड की विधि की स्थिति यह हो गई कि इंगलैण्ड के न्यायालय में अनुयोज्य होने के लिए विदेशी अपकृत्य ऐसा कृत्य होना चाहिए--(क) जो कि यदि ब्रिटेन में किया गया है तो वह अपकृत्य होगा और (ख) उस विदेश[2] की विधि के अनुसार न्यायोचित नहीं होगा, जहां वह किया गया है । हाल ही में[3] इस अपेक्षा को उपान्तरित किया गया है और अब यह इस प्रकार पढ़ा जाना चाहिए--'जो कि विदेशी विधि के अनुसार अनुयोज्य है।'

इस नियम की बहुधा आलोचना की गई है और ऐसा प्रतीत होता है कि इसे साधारणतया सुरक्षित, यद्यपि अत्यन्त अप्रिय, स्थिति के कठोर नियम के रूप में[4] बहुत स्वीकार किया गया है । प्रोफेसर येन्टिमा[5] तो यहां तक कहते हैं कि इंगलैण्ड के इस सिद्धान्त में न्या० वाइल्स की राय का अकारण गलत अर्थान्वियन अन्तर्वलित है, और इस प्रकार विधि में इसकी पृथक् और आयुक्तिक स्थिति बन जाती है ।

3.9 अपकृत्यों की बाबत अमेरिकी दृष्टिकोण यह है कि लेक्स लोसाइ कमीसी (अर्थात् उस देश का विधि संग्रह जहां अपकृत्य किया गया है) शासित करती है । अमेरिकन बनाना कम्पनी बनाम यूनाइटेड फ्रूट कं०[6] में संयुक्त राष्ट्र की सुप्रीम कोर्ट ने कहा था कि "किसी कार्य का विधिपूर्ण या अविधिपूर्ण स्वरूप पूर्णरूप से उस देश की विधि द्वारा अवधारित किया जाना चाहिए, जहां कि कार्य किया जाना है ।" साधारणतया सुरक्षित ।

3.10 इस सबंध में अमेरिकन बनाना कं० बनाम यूनाइटेड फ्रूट कं० वाले मामले[6] में न्या० फा० होम्स की राय में से निम्नलिखित प्रसिद्ध उद्धरण कर दिया जाए :-- अमेरिका में विधि ।

"प्रथमतः हानिकारित करने वाले कार्य, जहां तक प्रतीत होता है संयुक्त राज्य की अधिकारिता के बाहर और अन्य राज्यों के भीतर किए गए थे । यह तर्क आश्चर्यजनक लगता है कि वे कांग्रेस के ऐक्ट द्वारा शासित थे ।"

"साधारण और सार्वभौमिक नियम यह है कि किसी कार्य का विधिपूर्ण या अविधिपूर्ण स्वरूप पूर्णरूप से उस देश की विधि द्वारा अवधारित किया जाना चाहिए, जहां कि वह कार्य किया गया है-- दूसरी अधिकारिता के लिए, यदि वह कार्य करने वाले के साथ अपने विचारों के अनुसार, न कि उस स्थान के अनुसार, जहां कि उसने कार्य किया था, व्यवहार करती है तो यह केवल अन्यायपूर्ण ही नहीं होगा अपितु दूसरे शासक के प्राधिकार में बाधा डालना भी होगा और राष्ट्रों के शिष्टाचार के विरुद्ध होगा जिसके बारे में अन्य संबंधित राज्य न्यायतः आक्रोश कर सकता है ।.................. पूर्ववर्ती विचारणाएं संदेह की स्थिति में किसी कानून के उस अर्थान्वियन की ओर अग्रसर करेंगी जो कि अपने प्रवर्तन और प्रभाव में उन प्रादेशिक सीमाओं तक प्रभाव सीमित होने के लिए आशयित है जिन पर विधि निर्माता को साधारण और विधि सम्मत शक्ति थी । सभी

1. फिलिप्स बनाम आयर, (1870) एल-आर० 6, क्यू-बी-1, 28, 29 ।
2. (1963) ब्रिटिश इयरबुल आफ इंटरनेशनल ला, पृष्ठ 117 ।
3. चेप्लिन बनाम बायज, (1971) ए० सी० 356 (एच०एल०) ।
4. (क) रावैल कन्फ्लिक्ट आफ लाज, पृष्ठ 239 ।
(ख) इंगलिश, कन्फ्लिक्ट आफ लाज (1959), पृष्ठ 476 (विचार न्यायोचित नहीं है, अत्यंत असमाधानप्रद है) ।
5. येन्टिमा (1949) 27 केनेडियन बार रिव्यू, पृष्ठ 116-22 पर और (1951) 4 इंटरनेशनल ला क्वार्टर्ली, पृष्ठ 8-9 पर ।
6. अमेरिकन बनाना कं० बनाम यूनाइटेड फ्रूट कं०, (1909) 213, यू०एस० 347, 355, 356, 357 (न्या० होम्स) ।

विधान प्रथमदृष्ट्या प्रादेशिक होते हैं। (मामले उद्धृत किए गए हैं) ऐसे शब्द जिनका सार्वभौमिक व्याप्ति क्षेत्र है, जैसे किसी व्यापार के अवरोध में की गई प्रत्येक संविदा, 'प्रत्येक व्यक्ति जो एकाधिकार प्राप्त करेगा' आदि साधारतया ऐसे अर्थ वाले समझे जाएंगे जोकि प्रत्येक व्यक्ति को उस विधान के अधीन ले आते हैं न कि वह सब जो कि विधान निर्माता बाद में उससे ग्रहण कर सके। वर्तमान कानून (शेर्मन ऐक्ट) के मामले में, पनामा या कोष्टारिका में किए गए कार्यों को आपराधिक बनाने का प्रयास करने वाले संयुक्त राज्य अमेरीका की अनधिसंभाव्यता स्पष्ट है, यद्यपि विधि उन कार्यों को दाण्डिक बनाकर आरम्भ की गई है, जिनके लिए वह वाद लाने का अधिकार देती है।

क्योंकि पुन: केवल पनामा या कोष्टारिका में प्रतिवादी के कार्य ही ऐसे नहीं थे, जोकि वे शेर्मन ऐक्ट के अन्तर्गत नहीं थे किन्तु वे उस स्थान की विधि के अनुसार उपकृत्य नहीं थे और इसलिए वे अपकृत्य कदापि नहीं थे, चाहे वे उस कानून की नैतिक और आर्थिक अभिधारणाओं के कितने ही विरुद्ध हों।

इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि अपकृत्य की बाबत भी हाल की प्रकृतियां फिलिप बनाम आयर[1] में दिए गए नियम का बहुत निष्ठता से पालन न करने की और दो विनिश्चयों को निर्दिष्ट करना पर्याप्त होगा "एक हाउस आफ लार्ड्स[2] का और दूसरा आस्ट्रेलिया के हाई कोर्ट[3] का— जो कि कतिपय पहलुओं की बाबत (उदाहरणार्थ, हाउस आफ लार्डस वाले मामले में हानि का परिमाण) उस न्यायालय की विधि पर दिए गए जोर को दर्शित करते हैं।"

संविदाएं।

3.11 जहां तक सविदाओं का सम्बन्ध है, साधारण सिद्धान्त यह है कि संविदा की उचित विधि वह विधिक पद्धति है जोकि विशेष संविदा के आधार पर पक्षकारों के कर्तव्यों को शासित करती है। इगलैंड[4] में और कुछ अन्य कामन ला अधिकारिताओं[5] वाले देशों में भी वही विधि है, जो पक्षकारों ने या तो स्पष्ट रूप से या विवक्षा द्वारा, अपने संविदा गत संबंधों को शासित करने के लिए चुनी है। इस प्रकार, आशय इनमें संयोगी तत्व है।

ऐसे अन्य मामले भी हैं, जिनमें विदेशी कानून उन संविदाओं को विनियमित करने के लिए, जहां वे प्रशासक के राज्य की विधि[6] का भाग है, लागू किए गए हैं।

वर्तमान जांच का अपकृत्य या संविदा से संबंधित न होना।

3.12 किन्तु हम अपकृत्य या संविदा की उचित विधि के प्रश्न से संबंधित नहीं हैं। वह प्रमित प्रश्न जिस पर विचार किया जाना है, यह है कि न्यायालयों द्वारा विवाह का विघटन मंजूर करते समय कौन सी विधि लागू की जाती है।

हम इस प्रश्न पर सर्वप्रथम भारतीय विधि[7] के प्रति निर्देश से और उसके पश्चात् इंगलैण्ड[8] और अमेरिकी विधि[9] के प्रति निर्देश से विचार करना प्रारम्भ कर रहे हैं। उसके पश्चात् हम इस प्रश्न पर विचार करेंगें कि इसमें कोई परिवर्तन किए जाने की आवश्यकता है या नहीं।

III. भारतीय विधि

भारतीय विधि के अधीन विनिश्चय।

3.13 जहां तक भारतीय विधि का संबंध है, सर्वप्रथम हम क्रिश्चियनों को लागू अधिनियम के प्रति-निर्देश करेंगे। भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन ऐसे अनेकानेक विनिश्चय है, जिनमें भारत

1. फिलिप्स बनाम आयर, (1870) ला रिपोर्टस 6 क्यू-बी-1, 28, 29, पैरा 3-8 (पूर्ववर्ती)।
2. चैप्लिन बनाम बाइज, (1971) ए०सी० 356, (1969) 2 आल ई०आर० 1085 (एच०एल)।
3. एन्डर्सन बनाम इरिक एडर्संसन, (1966) 114 सी० आई० आर० 20 (आस्ट्रेलिया)।
4. माउंट अलबर्ट बरो काउन्सिल बनाम आस्ट्रेलियन टैम्परेंस सोसाइटी (1938) ए०सी० 224, 240 लार्ड राइट के अनुसार: रिबलेम बाई हल्बर्ट बेग एण्ड कं० लिमिटेड, (1956)। चासरी 323, 340।
5. (1963) बी० वाई० बी० आई० एल० पृष्ठ 134 देखिए।
6. उदाहरणार्थ देखिए कलेम बाई हल्बर्ट बेग एण्ड कम्पनी लि० (1956) चासरी 323 (जर्मन मोरेटोरियम ला ऐसी संविदा को लागू है, जिसका उपर्युक्त विधि जर्मन थी); कहलर बनाम मिडलैण्ड बैंक लि० (1950) ए०सी० 24 (चैकोस्लोवाक विधान चैकोस्लोवाक विधि द्वारा शासित संविदा को लागू है), आर० बनाम इंटरनेशनल ट्रस्टी फोर दि प्रोटेक्शन आफ बोनहोल्डर्स एकेटीनिगासेलेशफट कांग्रेस को संकल्प अमरीकन विधि द्वारा शासित संविदा को लागू है)।
7. आगे पैरा 3-13 और आगे।
8. आगे पैरा 3-20 और आगे।
9. आगे पैरा 3-33 क और आगे।

के न्यायालयों ने उस अधिनियम में विनिर्दिष्ट आधार पर विवाह-विच्छेद इस प्रश्न को दृष्टि में लाए बिना मंजूर किए हैं कि उस आधार की विवाह से संबंध रखने वाले किसी अन्य देश में (जैसे कि वह देश, जहां विवाह अनुष्ठापित[1] किया गया था या जहां विवाह विषयक अवचार हुआ था[2] या पक्षकारों[3] की राष्ट्रिकता का देश) विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में मान्यता दी गई थी या नहीं दी गई थी।

3.14 विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण से संबंधित भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन निम्नलिखित निदर्शक मामलों का अध्ययन यह दर्शित करता है कि अनुतोष के आधार पूर्ण रूप से भारतीय विधि द्वारा शासित माने गए थे, भले ही उनमें विदेशी तत्व अन्तर्वलित था। अधिकारिता के अपेक्षित शीर्ष की विद्यमानता पर्याप्त समझी गई थी।

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम पर चुने हुए निर्णय

1. होर्टनासंदा बनाम जोन सेबास्तियन ए० आई० आर० 1935 मुम्बई 121 मु० न्या० बियोमाउंट (पक्षकार मुम्बई में साथ-साथ रहते थे वे नैरोबी चले गए पत्नी मुम्बई वापस आ गई-- न्यायिक पृथक्करण मंजूर किया गया--विदेशी विधि पर विचार नहीं किया गया)।

2. रोज हिल्स बनाम लक सी० हिल, ए० आई० आर० 1923 मुम्बई 284, 285 (मार्शलीज में जहाज पर पत्नी का जारकर्म विवाह-विच्छेद की मंजूरी न्यायोचित ठहराने के लिए पर्याप्त था।

3. डब्ल्यू० डी बनाम ई० डी० ए० आई० आर० 1933 सिंध 27 (यह मत व्यक्त किया गया था कि पक्षकारों ने 1872 के अधिनियम के अधीन विवाह कर लिया होना चाहिए किन्तु वह इतरोक्ति था।

4. श्रीमती नान ग्रीनवुड बनाम एल० वी० ग्रीनवुड ए० आई० आर० 1928 अवध, 218(1) (न्या० पुलन)।

(पक्षकार भारत में अधिवसित नहीं थे--आयरलण्ड में विवाह हुआ था--विवाह-विच्छेद मंजूर किया गया)

5. गियोरडानों का मामला, (1912) आई० एल० आर० 40 कल० 215 (इटली का दम्पत्ति[4])।

5क. शिरीनमल,[5] ए० आई० आर० 1952 पंजाब 277।

6. ब्राइट बनाम ब्राइट आई० एल० आर० 36 कल० 964।

7. ग्रांट बनाम ग्रांट, ए० आई० आर० 1937 पटना 82 (भारत के बाहर जारकर्म--पक्षकार भारत में अधिवसित थे)

3.15 गियोरडानों के मामले[6] में पति इटली का प्रजाजन था और उसका अधिवास इटली में था। उसने भारत में विवाह-विच्छेद के लिए कार्यवाहियां अपनी पत्नी के जारकर्म के आधार पर संस्थित कीं। विवाह भारत में अनुष्ठापित किया गया था और पक्षकार ब्रिटिश भारत में निवास कर रहे थे। (भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, जैसा कि उस समय था, उसके अनुसार निवास, विघटन के लिए अधिकारिता प्रदान करने के लिए पर्याप्त था)

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के उपबन्धों के अधीन, न्यायालय जारकर्म के सबूत पर विवाह-विच्छेद मंजूर करने के लिए आबद्ध था, यद्यपि विवाह-विच्छेद का भारत से बाहर कोई प्रभाव नहीं था इस प्रकार इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इटली में उस समय विवाह-विच्छेद के लिए कोई उपबन्ध नहीं था।

3.16 शिरीनमल के मामले[7] में प्रत्यर्थी पति एक ब्रिटिश सिपाही था, यद्यपि वह अस्थायी रूप से ब्रिटिश भारत में रहा था। उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि इसमें केवल भारतीय विधि लागू थी।

---

1. रोज हिल्स का मामला, (आगे पैरा 3-14)।
2. श्रीमती नान ग्रीनवुड का मामला (पैरा 3-15)।
3. गियोरडानो का मामला (आगे पैरा 3-15)।
4. आगे पैरा 3.15 देखिए।
5. आगे पैरा 3.16 देखिए।
6. गियोडानो बनाम गियोडानो, (1912) आई०एल०आर० 40 कल० 215।
7. शिरीनमल बनाम टेलर, ए०आई० आर 1952 पंजा० 277, 279 (न्या० सोनी) (ब्रिटिश सिपाही)।

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 7 से (न्यायालय को इंग्लैण्ड की प्रथा का अनुसरण करना था) कोई अन्तर नहीं पड़ा, क्योंकि अभिव्यक्त रूप से यह कथन किया गया था कि वह धारा—"इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबन्धों के अध्यधीन रहते हुए भी………"

उच्च न्यायालय ने आगे यह कहा:—

"अतः, यदि वे उपबन्ध, जोकि इस अधिनियम की धारा 10 में दिए गए हैं, केवल एक ऐसे निश्चित आधार प्रदान करते हैं, जिन पर कि विवाह विघटित किया जा सकता है, तो मेरा विचार है कि विवाह के विघटन के आधारों का धारा 7 के फलस्वरूप उन आधारों तक विस्तार नहीं किया जा सकता जो कि हो सकता है तत्समय इंग्लैण्ड में प्रचलित हों। अतः मुझे यह अभिनिर्धारित करना चाहिए कि इंग्लैण्ड में प्रचलित एक्ट की संशोधित धारा 176 के उपबन्ध, जो कि पति द्वारा तीन वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के लिए, बिना कारण, पत्नी का अधित्यजन किए जाने के आधार पर विवाह के विघटन की अनुज्ञा देते हैं, इस देश में लागू नहीं होंगे। इस देश में, "पति द्वारा बिना कारण अपनी पत्नी का अधित्यजन विवाह विघटन के लिए आधार तक होगा, यदि अधित्यजन दो वर्ष की कालावधि या उससे अधिक के लिए हो और उसके साथ जारकर्म भी हो।"

इसमें संदेह नहीं कि इस मामले में निष्कर्ष यह दिया गया था कि विवाह शून्य है किन्तु ऊपर की उक्ति प्रवृत्ति दर्शित करती है।

भारतीय विनिश्चय।

3.17 इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869[1] के अधीन विभिन्न विनिश्चयों में, भारतीय न्यायालयों ने, उस अधिनियम के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपने को विवाह-विच्छेद के उन्हीं आधारों पर विचार करने तक सीमित रखा था, जो कि उस अधिनियम में दिए गए हैं। निःसंदेह, कार्यवाहियां उनकी सक्षमता के अन्तर्गत ही होनी चाहिएं और इस बाबत अधिनियम की धारा 2 में अधिकथित कसौटी अवश्य पूरी की जानी चाहिए। किन्तु एक बार जब भारत के न्यायालय अधिनियम की धारा 2 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने में सक्षम हों तो अनुतोष के लिए आधार केवल उस अधिनियम में ही ढूंढा जाना चाहिए।

1926 का अधिनियम।

3.18 यह कथन कर दिया जाए कि इंडियन एण्ड कोलोनियल डाइवोर्स ज्यूरिस्डिक्शन ऐक्ट, 1926 ने भारत में या महामहीम के अधिक्षेत्रों में अन्यत्र उन न्यायालयों को, जो कि संपरिषद् आदेश द्वारा अधिकथित किए गए थे, यूनाइटेड किंगडम में अधिवसित व्यक्तियों को विवाह-विच्छेद की मंजूरी देने के लिए वैसे ही सशक्त किया था मानों वे प्रश्नगत राज्यक्षेत्र में अधिवसित थे। इस प्रकार जब कि अधिवास को नाममात्र के लिए या सैद्धांतिक रूप से आधार बनाए रखा गया था अधिकारिता अपनी अर्जी प्रस्तुत करने के समय अर्जीदार के निवास के आधार पर और पक्षकारों के द्वारा एकसाथ अपने अन्तिम निवास के आधार पर प्रयोक्तव्य थी[2] लागू की जाने वाली मूल विधि तो इंग्लैण्ड की विधि थी। यही उपबन्ध, जोकि स्वरूप में अपवादात्मक है, साधारण नियम को स्पष्टतया प्रदर्शित करने में सहायता प्रदान करता है।

हिन्दू विवाह अधिनियम।

3.19 अब आगे इस बात पर ध्यान दिया जाए कि हिन्दू विवाह अधिनियम[3] के अधीन यह तथ्य कि विवाह उन राज्यक्षेत्रों के बाहर किया गया था या विवाह विषयक अवचार उन राज्यक्षेत्रों के बाहर हुआ था महत्वहीन है। दूसरे शब्दों में एक बार यह स्थापित हो जाने पर कि पक्षकार हिन्दू हैं और भारत में अधिवसित हैं, अधिनियम के विवाह विषयक अनुतोष से संबंधित उपबन्ध लागू हो जाते हैं। अधिनियम में विधि के चयन के बारे में कोई स्पष्ट उपबन्ध नहीं है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कार्यवाहियां भारत में फाइल की गई हैं और यदि भारत के न्यायालय अन्यथा सक्षम हैं तो अनुतोष अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार और केवल उसी के अनुसार दिया जाना होगा। यदि विधानमण्डल का आशय भिन्न होता है तो विधानमंडल ने ऐसा स्पष्ट कर दिया होता।

हम विशेष-विवाह अधिनियम और अन्य विधियों के उपबन्धों पर विस्तार से चर्चा करने के लिए विरत नहीं हो रहे हैं। किन्तु हमारे प्रयोजन के लिए यह कहना पर्याप्त होगा कि विवाह और विवाह-विच्छेद से सम्बन्धित उस अधिनियम और अन्य विधियों में विदेशी विधि को लागू करने के लिए उपबन्ध नहीं किया गया है

1. आगे अध्याय 6।
2. हैल्सबरी स्टेट्यूट्स (दूसरा संस्करण) 1158।
3. धारा 1(2), 2 और 10 से 13 हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955।

मुस्लिम मैरिजेज ऐक्ट, 1939 का विघटन ।

3.20 इस बात पर ध्यान दिया जाए कि मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 कोई ऐसा निर्बन्धन अधिरोपित नहीं करता है कि उस अधिनियम के अधीन पत्नी के अनुरोध पर विघटित किया जाने वाला विवाह भारत में अनुष्ठापित किया गया होना चाहिए या विवाह विषयक वह अवचार, जो पत्नी द्वारा वांछित अनुतोष के आधार को गठित करता है, भारत में हुआ होना चाहिए । सारतः, यदि पक्षकार मुस्लिम विधि द्वारा शासित हैं, तो यह पर्याप्त है । यह उपधारणा की जा सकती है कि 'मुस्लिम विधि' से इस्लामिक विधि का वह भाग अभिप्रेत है जो कि भारत में मुसलमानों को स्वीय विधि के रूप में लागू किया जाता है ।

IV. इंगलैंड की विधि

विवाह-विच्छेद के बारे में साधारण नियम ।

3.21 भारतीय विधि की बाबत तो इतना ही है । इंगलैण्ड में साधारण नियम यह है कि इंगलैण्ड में उचित रूप से विवाह-विच्छेद के लिए की गई कार्यवाहियों में इंगलैण्ड की विधि, जैसी कि वह कार्यवाहियों के समय प्रवृत्त हो, विवाह-विच्छेद के आधारों को अनन्यतः शासित करती है ।

अन्य तत्व , जैसे कि---

(क) वह विधि जिसके अधीन पक्षकारों का विवाह हुआ था ;

(ख) पक्षकारों की राष्ट्रीय विधि, या

(ग) उस स्थान की विधि, जहां विवाह विषयक अपराध किया गया था,

इंगलैण्ड की प्रथा के अनुसार पूर्ण रूप से असंगत है । इस स्थिति में वहां कानूनी उपान्तरण हो सकता है किन्तु कानून से अलग यही सामान्य नियम हैं ।

विवाह-विच्छेद का एक मामला ।

3.22 इस प्रकार, जनेली बनाम जनेली के मामले[1] में इटली के एक राष्ट्रिक ने, 1948 में, इंगलैण्ड में, जहां वह उस समय अधिवास कर रहा था, एक अंग्रेज स्त्री से विवाह किया । बाद में, वह इंगलैण्ड से निर्वासित कर दिया गया और तदुपरि इटली में अधिवास के लिए लौट गया । अंग्रेज स्त्री को, इटली की विधि (जोकि उस समय उसके अधिवास की विधि थी) के ऐसे नियम के होते हुए भी इंगलैण्ड की विधि को लागू करके इंगलैण्ड में विवाह-विच्छेद मंजूर कर दिया गया ।

अकृतता के बारे में स्थिति ।

3.23 विवाह की अकृतता के लिए कार्यवाहियों की बाबत स्थिति भिन्न हो सकती है । किसी विवाह के बातिलकरण के लिए कोई कार्रवाई या कार्यवाही विवाह-विच्छेद की कार्यवाही से इस बात में भिन्न होती है कि विवाह-विच्छेद कार्यवाही उस विवाह संबंध का जिसका विद्यमान होना स्वीकृत किया गया है, विच्छेद करने के लिए संस्थित की जाती है, जबकि बातिलकरण कार्यवाही न्यायिकतः यह घोषणा करने के प्रयोजन के लिए होती है कि किसी निर्योग्यता या त्रुटि के कारण, जोकि विवाह कर्म के समय विद्यमान थी, पक्षकारों के बीच कोई विधिमान्य विवाह कभी नहीं हुआ अथवा पक्षकारों के बीच कोई विधिमान्य विवाह सम्बन्ध कभी नहीं रहा। बातिलकरण का विवाह-विच्छेद से इस बात में प्रभेद किया जा सकता है कि साधारण नियम के रूप में कोई बातिलकरण कार्यवाही विवाह के समय विद्यमान उन तत्वों पर आधारित होती है जो कि उस विवाह का परिवर्जन न्यायोचित ठहराते हैं जब कि विवाह-विच्छेद साधारणतया विवाह के पश्चात् उत्पन्न होने वाले कारणों के लिए होता है यद्यपि कुछ कानून, बातिलकरण या विवाह-विच्छेद के लिए आधारों को निर्धारित करने में इन प्रभेदों[2] का पालन नहीं करते ।

तर्काधार ।

3.24 हमारा अकृतता कार्यवाहियों को लागू विधि से संबंध नहीं किन्तु जहां तक विवाह-विच्छेद का संबंध है उस बारे में साधारण नियम वह है जो कि ऊपर कथित है । इंगलैण्ड के नियम का तर्काधार[3] यह प्रतीत होता है कि यह प्रश्न कि न्यायालय विवाह विघटित करे या नहीं ऐसा प्रश्न है "जो नैतिकता, धर्म और लोक नीति[4] की इंगलैण्ड की धारणाओं द्वारा विनिश्चित किया जाना चाहिए" और यह "प्रश्न ऐसा है जोकि अनन्य रूप से इंगलैण्ड के विधानमण्डल द्वारा अधिरोपित नियमों और शर्तों द्वारा शासित होता है" ।

---

1. जनेली बनाम जनेली, (1948) 92 सोलिसिटर्स जरनल 646 (कोर्ट आफ अपील) चेशायर प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (1970) पृष्ठ 354 ।
2. अमेरिकन ज्यूरिस्प्रुडेंस, दूसरा संस्करण, जिल्द 24 पृष्ठ 177, 178 ।
3. आगे पैरा 3.42 भी देखिए ।
4. वुल्फ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (1950) पष्ठ 374 चैशायर द्वारा उसके अपने 1975 के संस्करण के पृष्ठ 353, 369 पर भी उद्धृत किया गया है ।

यह महत्वहीन है कि आधार को गठित करने वाले तथ्य इंगलैण्ड[1] के बाहर घटित हुए थे।

इस संबंध में बुल्फ[2] ने स्पष्ट रूप से स्थिति का कथन किया है—

"इंगलैंड के न्यायालय विवाह-विच्छेद या पृथक्करण कार्यवाहियों को ग्रहण करते समय केवल इंगलैंड की विधि न कि कोई अन्य विधि लागू करते हैं क्योंकि उन दशाओं के बारे में प्रश्न, जिनके अधीन विवाह बंधन शिथिल किया जा सकता है या नष्ट किया जा सकता है, नैतिकता, धर्म और लोक नीति की बाबत इंगलड की मौलिक धारणाओं से संबंधित होता है। अतः इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि जहां आपवादिक मामलों में इंगलैंड का न्यायालय अधिवास का न्यायालय नहीं है फिर भी यह इंगलैंड की ही विधि है जो लागू की जाती है, न कि विदेशी अधिवास की विधि।

विदेशी विवाह-विच्छेद को मान्यता दी गई, भले ही इंगलैंड में वह आधार विधिमान्य नहीं था।

3.25 इसके विपरीत, यदि कोई विदेशी विवाह-विच्छेद अधिकारिता के संबंध में विधिमान्य है तो उसे इस बात के होते हुए भी कि विदेश में वह विवाह-विच्छेद ऐसे आधार पर अभिप्राप्त किया गया था जिसे कि इंगलैंड की विधिमान्यता[3] नहीं देती, इंगलैंड में मान्यता दी जाएगी।

चैशायर के उत्तरवर्ती संस्करणों में बराबर यह विचार प्रकट किया गया है कि इंगलैंड में विवाह-विच्छेद के लिए लाए गए वाद में उस स्थान की मूल विधि बिना अपवाद[4] के लागू की जानी चाहिए। अधिकांश मामलों में अधिकारिता के अधिवास पर आधारित होने के कारण, न्यायालयों से कभी भी विनिर्दिष्ट रूप से यह विनिश्चय करने के लिए नहीं कहा गया है कि वे इंगलैंड की विधि को अधिवास विधि के रूप में लागू करें या स्थानीय विधि के रूप में तथापि वह निर्णयज विधि, जोकि उपलब्ध है, इस स्थिति को संदेहातीत बनाती है। इंगलैंड की अधिकारिता और विवाह-विच्छेद विधि उपलब्ध होगी, भले ही वह विवाह विषयक अवचार, जिस पर अर्जी आधारित है, उस विदेश में किया गया है जहां पक्षकार उस समय अधिवसित थे। परिणामस्वरूप, यह समान रूप से महत्वहीन माना जाता है कि अवचार उसके किए जाने के समय विवाह-विच्छेद के लिए कोई आधार नहीं था यदि वास्तव में वह वाद लाने के समय वाद में अर्जित किए गए इंगलैंड के अधिवास में विवाह-विच्छेद के लिए आधार है।

विलसन का मामला।

3.26 विलसन बनाम विलसन[5] में प्रश्न यह था कि क्या इंगलैंड के न्यायालय को 1871 में फाइल किए गए विलसन के वाद में उसकी पत्नी के जारकर्म के आधार पर उसके विवाह का विघटन करने की अधिकारिता थी या नहीं। विलसन स्काटिश था और उसका विवाह स्काटिश पत्नी से स्काटलैण्ड में हुआ था और वह ग्लासगो में किए जा रहे कारबार में भागीदार था। विवाह के पश्चात् विलसन और उसकी पत्नी ग्लासगो के समीप निवास कर रहे थे। विलसन के पास लोकलोमण्ड के समीप, जहां उसने शिकार करने का आवास बनाया था, कुछ जमीन का पट्टा भी था। 1866 में अपनी पत्नी के जारकर्म का पता लगने पर विलसन ने अपने संस्थापन को समाप्त कर दिया और वह इंगलैण्ड चला गया, जहां वह अपनी मां के साथ रहने लगा। वह ग्लासगो के अपने कारबार की आय बराबर लेता रहा और जब उसके क्लब का चन्दा देय हुआ तो विलसन ने अपने भागीदार से उस राशि का संदाय करने के लिए अनुरोध किया और अपने भागीदार को लिखा कि वह ग्लासगो से पूर्ण रूप से सम्बन्ध विच्छेद नहीं करना चाहता है। उसने उस भूमि का पट्टा भी नवीकृत करा लिया जिस पर इसका शिकार करने का आवास था और जिसे वह अपने पिता को भूमि कहता था। उस एकमात्र सम्पत्ति के बारे में, जो कि विलसन के पास थी, यह दर्शित किया गया था कि वह स्काटलैण्ड में थी और लन्दन में वह उसका

1. चेपोक बनाम चेपोक (1962) 3 आल इंगलैंड रिपोर्ट्स, 990, 992 (इंगलैंड के बाहर अभित्यजन)।
2. बुल्फ, प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (1950) पृष्ठ 373-374।
3. (क) इंडिका बनाम इंडिका (1959) 1 ए०सी०-33, 66, 73-74 बेटर बनाम बेटर (1966) प्रोबेट 209 का अनुमोदन करते हुए।
   (ख) तिजानिक बनाम तिजानिक (1963) प्रोबेट 181, 184।
   (ग) ब्राउन बनाम ब्राउन (1968) प्रोबेट 518, (1968) 2 आल० ई० आर० 11।
4. (क) चेशायर प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (छटा संस्करण) 196 पृष्ठ 393 जो (1963) ब्रिटिश ईयर बुक आफ इंटरनेशनल ला 127-128 पर उद्धृत किया गया है।
   (ख) चेशायर प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (1970) पृष्ठ 353 से 368 तक और (1975) पृष्ठ 369 से 387 तक।
5. विलसन बनाम विलसन (1872) 2 पी० एण्ड डी० 435, 27 एल० टी० 351, 41 एल०जे० पी० एण्ड पी०, एण्ड एम० 74; 20 डब्ल्यू आर० 891।

भरण-पोषण मुख्य रूप से उसकी मां द्वारा किया जाता था । स्काटलैण्ड के न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विलसन ने इंगलिश अधिवास कभी अर्जित नहीं किया था, विलसन ने स्वयं, साक्ष्य देते हुए, बलपूर्वक यह कहा कि जब वह 1806 में लंदन में रहने के लिए गया तो उसने भविष्य में इंगलैण्ड को अपना घर बनाने के आशय से ऐसा किया था । लार्ड पैंजास का कथन यह था कि यदि विलसन की मृत्यु हो गई होती और उसके आशय के बारे में सिवाय उन बातों के कुछ भी ज्ञात न होता, जो कि इंगलैंड में उसके निवास की परिवर्ती परिस्थितियों से पता लग सकता, तो वह साक्ष्य न्यायालय को इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए समर्थ बनाने में पर्याप्त न होता कि उसने इंगलैण्ड का अधिवास ग्रहण कर लिया था किन्तु उन्होंने यह कहा कि :

3.26क. "अभी तक, जब कि वह व्यक्ति यहां पर है और जब कि वह कसम खा रहा है कि उसका आशय इंगलैण्ड का अधिवास ग्रहण करने का था तो यह दर्शित करने वाली किसी परिस्थिति के न होने की दशा में कि जो कुछ वह कहता है, सच नहीं है या उसके सच होने की संभावना नहीं है, उसका विश्वास क्यों नहीं किया जाना चाहिए । इस मामले में, तब यह प्रश्न इतना अधिक नहीं है कि उसके इंगलैण्ड के निवास की परिस्थितियां उसका इंगलैण्ड का अधिवास साबित करती हैं या नहीं या इंगलैण्ड का अधिवास सृष्ट करने के लिए उसके आशय की बाबत उसकी कसम के होते हुए भी, दूसरी ओर, न्यायालय में उसकी कसम की उपेक्षा करके उसका अविश्वास करने का समर्थन करने वाली पर्याप्त परिस्थितियां हैं या नहीं । मुझे किसी ऐसी परिस्थिति के बारे में जानकारी नहीं है ।"

"अस्तु, मैं उस पर विश्वास करता हूं और यदि मैं यह विश्वास करता हूं कि वह स्काटलैंड से अपने सम्बन्ध को छोड़कर इंगलैण्ड में स्थायी रूप से रहने के आशय से और इंगलैण्ड को अपना भावी घर बनाने के आशय से आया था तो क्या इस बारे में कोई संदेह है कि ऐसा करके एक नया अधिवास बनाया गया था । मुझे इसमें आशंका नहीं है ।"

इस प्रकार, इस प्रश्न पर विस्तार से विचार किया गया था किन्तु अधिकारिता साबित होने पर लागू की गई मूल विधि इंगलैण्ड की विधि थी ।

3.27 मैजगर में उच्च न्यायालय[1] द्वारा विवाह-विच्छेद की विदेशी डिक्री के प्रति निदेश से निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया था :—

"यह पूर्ण सत्य है कि यह डिक्री उन आधारों पर, जिनको इस देश में मान्यता नहीं दी जाती है, घोषित की गई थी । जैसा कि मैंने कहा है अभिलेख पूरा और स्पष्ट है और यह प्रतीत होता है कि डिक्री इस आधार पर सुनवाई गई थी कि अपमानजनक व्यवहार और चिड़चिड़े स्वभाव और एसी प्रकार की बातों के कारण पत्नी अपनी विवाह संबंधी बाध्यताओं को पूरा करने में असफल रही थी जो कि स्पष्टतया एक आधार है जिसे इस देश में मान्यता नहीं दी गई है और जिसके बारे में निचला न्यायालय आश्वस्त था कि उसे यहां चुनौती नहीं दी गई है । यही उस देश में विवाह-विच्छेद का आधार था, जहां कि विवाह-विच्छेद घोषित किया गया था और जिस देश के न्यायालयों के प्रति ये पक्षकार उत्तरदायी थे । मेरी राय में, उन परिस्थितियों में न्यायाधीशों को इस प्रश्न के बारे में कुछ नहीं करना है कि विवाह-विच्छेद के आधारों को इस देश में मान्यता दी जाती है या नहीं, अथवा न्यायाधीश उनमें से किसी का अनुमोदन करते हैं या नहीं । यह मामला पेस्ट्रे बनाम पेस्ट्रे[2] में न्या० हिल द्वारा पृष्ठ 82 पर अपनी विशिष्ट संक्षिप्तता और यथार्थता के साथ रखा गया था । यह मामला बहुत कुछ, यद्यपि पूरी तरह नहीं, इसी मामले के समान था । इस न्यायालय द्वारा पारिणामिक भत्तों सहित न्यायिक पृथक्करण की डिक्री सुना दी जाने पर, यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या वह डिक्री फ्रांसीसी न्यायालय द्वारा सुनाई गई विवाह-विच्छेद की डिक्री के साथ बनी रहने दी जानी चाहिए । फ्रांसीसी न्यायालय की डिक्री उस आधार पर दी गई थी जोकि यहां समुचित आधार नहीं होगा, अर्थात् न्यायिक पृथक्करण की डिक्री की तीन वर्ष के लिए विद्यमानता । किन्तु यह सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय की ऐसी कार्यवाही में डिक्री है जिसमें कि पत्नी सक्रिय पक्षकार थी ।

---

1. मैजगर बनाम मैजगर, (1936) 3 आल० ई० आर० 130, 134 (भरण-पोषण के लिए आदेश प्रतिसंहृत करने से मजिस्ट्रेट द्वारा इन्कार) ।

2. पेस्ट्रे बनाम पेस्ट्रे, (1930) प्रोबेट 80 ।

मैं उन शब्दों पर जोर देता हूं। "इसका परिणाम यह है कि अर्जीदार और प्रत्यर्थी अब पति और पत्नी नहीं रहे हैं।"

"यहां यह मामला प्रारम्भ होता है और समाप्त हो जाता है, अर्थात् यही वह सब है जिससे कि इस देश के किसी न्यायालय का सम्बन्ध है और हमारी राय में, यह जांच करने से न्यायाधिपतियों का कोई सम्बन्ध नहीं है कि इसमें जारकर्म का वह तत्व नहीं है जो कि इस देश में विवाह-विच्छेद का आवश्यक संघटक है। इसी कारण से मेरी राय में, उनका विनिश्चय अविधिमान्य है।"

3.28 1957 में विनिश्चय किए गए एक मामले[1] में लार्ड जस्टिस हडसन ने कहा था :—

> "यदि यह कहा जाए कि चूंकि पक्षकार ब्रिटिश प्रजाजन नहीं हैं, अतः इंगलैण्ड की सामान्य विधि उन्हें लागू नहीं होती तो मेरा उत्तर यह है कि यही वह विधि है जो कि प्रथमदृष्टया इस देश के न्यायालयों में प्रशासित की जानी है।"

3.29 तिजानिक के मामले[2] में युगोस्लेविया में पति और पत्नी दोनों को मंजूर की गई डिक्री को मान्यता दी गई थी। इंगलैण्ड के न्यायलयों द्वारा डिक्री को मान्यता दी जाने के लिये यह तर्क महत्वहीन था कि विवाह-विच्छेद का आधार ऐसा आधार नहीं है जिस पर कि विवाह-विच्छेद इंगलैण्ड में अभिप्राप्त किया जा सकता है। यह स्थिति विनिर्दिष्ट रूप से अधिकथित की गई थी।

इस मामले में, पक्षकारों ने 1934 में युगोस्लेविया में विवाह किया था और दोनों युगोस्लेविया के राष्ट्रिक थे एवं 1939 में युद्ध आरंभ होने तक युगोस्लेविया में साथ-साथ रहते थे। पति युगोस्लेविया की सेना की ओर से युद्ध लड़ा था और इटली में युद्ध बंदी बनाकर ले जाया गया था। अभिरक्षा में तीन वर्ष रहने के पश्चात् उसने ब्रिटिश सेना में नौकरी कर ली थी और वहां उसने करीब दो वर्ष सेवा की थी। 1949 में वह इंगलैण्ड आ गया और उसने उस देश में वरण अधिवास अर्जित कर लिया। 1954 में उसने ब्रिटिश राष्ट्रिकता के लिये आवेदन किया और वह प्राप्त कर ली। पश्चात्वर्ती वर्षों में उसने कई बार, विशेष रूप से 1956 में, अपनी पत्नी को इगलैण्ड में आकर उसके साथ रहने के लिये निमंत्रित किया, किन्तु पत्नी इस बात के लिये अनिच्छुक थी। 1960 में पत्नी ने उसे दृष्यतः पुनर्विवाह करने की अनुज्ञा देते हुए एक दस्तावेज भेजा। तत्पश्चात् पति ने युगोस्लेविया में विधि के उस उपबंध के अधीन, जिसके द्वारा कोई विवाह, यदि पक्षकार लम्बी अवधि से अलग-अलग रह रहे हों और दोनों ने विवाह-विच्छेद के लिये सहमति दे दी हो, तो विघटित हो सकता था, अपने विवाह के विघटन के लिये कार्यवाहियां प्रारम्भ कीं। अक्तूबर, 1961 में युगोस्लेविया में सक्षम न्यायालय ने दोनों पक्षकारों के विवाह-विच्छेद की डिक्री सुना दी। यद्यपि डिक्री में यह कहा गया था कि यह मुकदमाकारों की उपस्थिति में सुनाई गई थी, किन्तु स्पष्टतः उपस्थिति निर्दिष्ट किए गए व्यक्तियों में केवल पति का परोक्षी और उसका सालिसीटर था। पति द्वारा अन्य बातों के साथ-साथ इस बात की घोषणा के लिये अर्जी दी जाने पर कि युगोस्लेविया में सुनाई गई विवाह-विच्छेद की डिक्री ने विवाह को विधिमान्य रूप में विघटित कर दिया था, यह अभिनिर्धारित किया गया कि युगोस्लेविया में कार्यवाहियों की वास्तविकता यह थी कि पत्नी अनुतोष मांगने में पति के साथ सम्मिलित हो गई थी और जहां तक वह आवेदन में शामिल हुई और उसे डिक्री मंजूर की गई, वहां तक स्थिति यह है वह डिक्री ऐसी स्त्री को प्रदान की गई थी जो अपने संपूर्ण जीवन काल पर्यन्त संबंधित न्यायालय की अधिकारिता के भीतर ही रही थी और चूंकि ब्रिटेन का न्यायालय ऐसी परिस्थितियों में अधिकारिता ग्रहण करेगा, इसलिये युगोस्लेविया के न्यायालय की डिक्री को मान्यता दी जायेगी। यह बात महत्वहीन है कि विवाह-विच्छेद का आधार ऐसा आधार नहीं था जिस पर इंगलैण्ड में विवाह-विच्छेद की मंजूरी दी जाती।

3.30 इंडिका के ही मामले[3] में, चैकोस्लोवाकिया में मंजूर किया गया विदेशी विवाह-विच्छेद (जिसको अन्ततोगत्वा मान्यता दी गई थी) वैयक्तिक संबंधों के भंग हो जाने के आधार पर मंजूर किया गया था। यह एक ऐसा तथ्य था जो उस रूप में 1949 में, जब ओस्ट्रीवा (चैकोस्लोवाकिया) के डिस्ट्रिक्ट कोर्ट ने विवाह-विच्छेद मंजूर किया था, विवाह-विच्छेद का आधार नहीं था। वास्तव में उसी मामले[4] में लार्ड मौरिस ने निम्न-लिखित मत व्यक्त किया था:—

1. तिकजानको बनाम तिकजानको, (1957) प्रोबेट 301, 306।
2. तिजानिक बनाम तिजानिक, (1967) 3 आल० ई० आर० 976।
3. इण्डिका बनाम इण्डिका, (1967) 2 आल० ई० आर० 689, 692 (एच० एल०)।
4. इण्डिका बनाम इण्डिका, (1967) 2 आल० ई० आर० 689, 700 (एच० एल०) (लार्ड मौरिस)।

"इस क्षेत्र में कतिपय कानूनी उपबन्ध हैं और बहुत से न्यायायिक विनिश्चय हुए हैं। मेरी राय से यह तर्क करना अति समयोत्तर होगा कि मान्यता ऐसे मामलों तक सीमित होनी चाहिए जिनके लिये कानून द्वारा उपबंध किया गया है। इस प्रकार यह भी तर्क करना, मेरी राय में, अति समयोत्तर होगा कि विदेशी डिक्री की मान्यता हर हालत में और अन्य बातों से पृथक्, ऐसे मामलों तक सीमित होनी चाहिये जिनमें ऐसी डिक्रियां उन आधारों पर दी गई हैं जो कि इस देश में विघटन की डिक्री के लिये आधार हैं। किन्तु, मान्यता सदैव इस परन्तुक को ध्यान में रखते हुए दी जानी चाहिये कि विदेशी डिक्री कपट द्वारा प्राप्त नहीं की गई हो और नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध नहीं हो। (लिप्रे[1] बनाम लिप्रे से तुलना कीजिए)। साल्वसेन के मामले में[2] अपने कथन में लार्ड हाल्डेन ने यह कहा था[3]।

"हमारे न्यायालय · · · · यदि हमारी धारणाओं के अनुसार कोई ठोस अन्याय नहीं हुआ है" तो कभी यह जांच नहीं करते हैं कि किसी सक्षम विदेशी न्यायालय ने अपनी अधिकारिता का अनुचित रूप से प्रयोग किया है। "इंगलैण्ड में अधिकारिता ग्रहण करने के लिये आधार के रूप में अधिवास की स्वीकृति से यह परिणाम निकला है कि यदि कोई पति और पत्नी दूसरे देश में अधिवसित हैं और यदि उस देश में विवाह-विच्छेद की डिक्री है तो उसको यहां मान्यता दी जायेगी। इस बात पर कोई आग्रह नहीं किया गया है कि दूसरे देश में डिक्री के लिए आधार इंगलैण्ड में अधिकथित आधारों के अनुरूप या तत्समान होने चाहिए"। (बैटर बनाम बैटर देखिए)[4]।

3.31 माथर बनाम महोनी[5] एक ध्यान देने योग्य विनिश्चय है—यह तथ्यों द्वारा प्रदर्शित विभिन्न राज्य-क्षेत्रीय संबंधों की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। यह दर्शित करता है कि इंगलैण्ड के न्यायालय मान्यता के प्रश्न पर विचार करते समय इस प्रश्न की जांच करने के लिये विरत नहीं होते हैं कि विदेश में पारित डिक्री ने राज्यक्षेत्रीय रखने वाले अन्य देशों की विधियों का कहां तक ध्यान रखा है।

इस मामले में, पति का जन्म स्काटलैण्ड में हुआ था। उसने इंगलैण्ड में वरण अधिवास अर्जित कर लिया। इस अधिवास को उसने सभी सुसंगत समयों पर बनाए रखा। 1961 में उसने रोम में एक ऐसी स्त्री से विवाह किया जो कि अपने अधिकांश जीवन काल के दौरान पेंसिलवानिया में रही थीं। तत्पश्चात् पक्षकार तीन वर्ष से अधिक समय तक साथ-साथ रहे। 1964 में पत्नी ने अपने पति को छोड़ दिया और संयुक्त राज्य अमेरिका को वापस लौट गई।

अगले वर्ष, अर्थात् 1965 में, पत्नी ने नेवेडा में मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विघटन की डिक्री प्राप्त कर ली। वह नेवेडा राज्य में यह डिक्री प्राप्त करने के स्पष्ट प्रयोजन के लिये गई थी। पश्चात्वर्ती इंगलिश कार्यवाहियों में पति ने इस घोषणा के लिये कि नेवेडा में पारित डिक्री ने विधिमान्य रूप से विवाह-विघटित किया था, या अनुकल्पतः उसे पत्नी के अधित्यजन के आधार पर विवाह-विच्छेद की प्रारंभिक डिक्री दी जाए, अर्जी फाइल की।

न्या० पाईने ने यह अभिनिर्धारित किया कि नेवेडा की डिक्री को इंगलैण्ड में प्रभावी होने के लिये मान्यता दी जानी चाहिये। इसलिये उनके द्वारा अपेक्षात्मक डिक्री सुनाई जाने का प्रश्न नहीं उठता। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिये कि न्यायाधीश पाईने ने इस प्रश्न पर चर्चा करना सुसंगत नहीं समझा कि विदेशी न्यायालय ने "क्रूरता" को इंगलैण्ड की धारणा पर ध्यान दिया था या नहीं। वास्तव में, इस तथ्य पर निर्भर नहीं किया गया कि क्रूरता इंगलैण्ड में भी विवाह-विच्छेद के लिये एक आधार है। यह केवल मात्र एक संयोग था।

विदेशी निर्णय के लिए कारणों का सुसंगत न होना।

3.32 इस प्रकार, इंगलैण्ड नियम के अनुसार, वे कारण जिनको कोई विदेशी न्यायालय अपनी डिक्री के लिये आधार बनाता है, उसकी डिक्री को मान्यता दी जाने के संबंध में महत्वहीन हैं। विदेशी डिक्री के आधारों

---

1. लिप्रे बनाम लिप्रे, (1969) 2 आल ई० आर० 49 (1965) प्रोबेट 32।
2. साल्वसेन का मामला, (1927) आल ई० आर० रिपोर्ट 78 (1927) ए० सी० 641।
3. साल्वसेन का मामला, (1927) आल ई० आर० रिपोर्ट, 78, 85 (1927) ए० सी० 641, 651।
4. बैटर बनाम बैटर (1906) प्रोबेट 209।
5. माथर बनाम महोनी (1968) डब्ल्यू० एल० आर० 1773।

का इंग्लैण्ड की विवाह विषयक विधि[1] में स्थापित विवाह-विच्छेद के आधारों के अनुरूप होना आवश्यक नहीं है। परन्तु निःसंदेह डिक्री में अच्छे नैतिक तत्वों का उल्लंघन नहीं होना चाहिये।

इंगलैंड के नियम के कारण।

3.33 इस प्रकार इंगलैण्ड के न्यायालय[2] विवाह-विच्छेद या प्रथक्करण कार्यवाहियां करते समय, इंगलैण्ड के विधि के अतिरिक्त कोई विधि लागू नहीं करते हैं, क्योंकि उन दशाओं का प्रश्न, जिनके अधीन विवाह बंधन शिथिल या नष्ट हो सकता है, नैतिकता, धर्म और लोकनीति की इंगलैण्ड की धारणाओं से संबंधित[3] होता है। इसलिये इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि, आपवादिक मामलों में, इंगलैण्ड का न्यायालय अधिवास का न्यायालय नहीं है। फिर भी यह इंगलैण्ड की विधि है जोकि लागू होती है, न कि विदेशी अधिवास की विधि।

रोबिन्सन के मामले[4] में न्यायाधीश विलमोट ने यह मत व्यक्त किया था :—

"किन्तु यदि कोई व्यक्ति मूलतः इंगलैण्ड के विधि के अधीन अनुतोष के लिये अनुरोध करता है तो उसे उस विधि के अनुसार, जिसके अधीन उसने ऐसे अनुतोष के लिये अनुरोध किया है, अनुतोष के लिये दावा करना चाहिये।"

कोई ऐसा ही तर्क उस सिद्धांत के आधार का गठन करने वाला प्रतीत होता है कि जिस पर इंगलैण्ड के न्यायालय कार्य करते हैं, अर्थात् इंगलिश विधि ही ऐसी है जो कि साधारणतया तब लागू की जानी है यदि विवाद के विघटन के बाबत अनुतोष इंगलैण्ड के किसी न्यायालय से मांगा जाता है।

V. संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थिति

अमरीकी विधि।

3.33क सब मिला कर यही स्थिति संयुक्त राज्य[5] की विधि की भी प्रतीत होती है। तथापि यदा कदा अमरीकी न्यायालय अपेक्षा करते हैं कि अवचार को उस राज्य की विधि द्वारा, जहां वह हुआ हो[6], विवाह-विच्छेद के लिए हेतुक के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।

संयुक्त राज्य अमेरिका में उस स्थान के न्यायालयों द्वारा अपनी स्वयं की विधियों का लागू करना।

3.34 अंतरराज्यीय वैषम्य की स्थिति की बाबत संयुक्त राज्य अमेरिका में लेफलार[7] ने यह कथन किया है :—

"आज, विधि चयन का मानक नियम राज्य के ऐसे न्यायालय की अपेक्षा करता है जो इस बारे में कि विवाह-विच्छेद के लिए क्या आधार हैं अपनी ही मौलिक विवाह-विच्छेद विधि को तब भी लागू करे जबकि उन पति पत्नियों के सम्बन्ध में जो उस समय अन्य राज्यों में अधिवसित हैं, अधिकथित आकार अन्य राज्यों में सम्पारित कर दिए जाते हैं।"

लेफलार[7] ने आगे यह कहा है कि यदि कोई राज्य अन्य हेतुकों के लिये विवाह-विच्छेद मंजूरी देना चाहता है तो अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में विवाह-विच्छेद के लिये आधारों के रूप में, उन आधारों को भी स्थापित कर सकता है जिन्हें उस स्थान को विधि द्वारा मान्यता दी गई है जहां कि विशेष तथ्य घटित हुए हैं, या जहां कि पक्षकार तथ्य घटित होने के समय अधिवसित थे। इसके विपरीत यदि कोई राज्य चाहे तो यह विवाह विच्छेद को मंजूरी देने से तब तक इंकार कर सकता है, जब तक कि अवलंबन किए गए ऐसे आधार न हों जो ऐसे अन्य राज्यों की विधि द्वारा विवाह-विच्छेद के लिये आधार हैं। यह पूर्णतया प्रत्येक राज्य पर निर्भर करता है कि वह अपने लिये विनिश्चय करे कि वह कानून को कब अधिनियमित करेगा।

---

1. (क) हार्वे बनाम पार्नी, (1880) 5 पी० डी० 153।
   (ख) पेयबर्टन बनाम हुडूधेस, (1899) 1 चा० 78।
   (ग) बेटर बनाम बेटर, (1960) प्रोबेट 209।
   (घ) मेजगर बनाम मेजगर (1937) प्रोबेट 19, (1963) 3 आल ई० आर० 130।
2. बुल्फ, प्राइवेट इन्टरनेशनल ला (1950) पृष्ठ 373-374।
3. आग पैरा 3.24 देखिए।
4. रोबिन्सन बनाम ब्लाण्डर (1760) 97 इंगलिश रिपोर्ट 717, 721 (किंग्स बैंच)।
5. टोरलोनिया बनाम टोरलोनिया 108 कोन 292, 142-क, 848 (1928) और चेस्थम, कुडरिच, किसवोल्ड और रीज, कान्फलिक्ट आफ लाज, केसेज एण्ड मेटीरीयल्स (चौथा संस्करण 1957) पृष्ठ 790 जो (1963) बी० वाई० बी० आई० एल० में पृष्ठ 127-128 पर उद्धृत किया गया।
6. पारजेल बनाम पारजेल (1891) 91 कि० 634 15 एस० डब्ल्यू० 658 देखिए जो (1963) बी० वाई० बी० आई० एल० के पृष्ठ 127-128 पर उद्धृत किया गया है।
7. लेफलार, कन्फिलक्ट, आफ लाज (1968) पृष्ठ 547।

उदाहरणार्थ, संयुक्त राज्य अमेरीका में अर्कनसास स्टेच्यूट[1] में मूल रूप से यह अपेक्षा की गई थी कि यदि विवाह विच्छेद के आधार अर्कनसास के बाहर ऐसे पक्षकारों के साथ, जो अर्कनसास के निवासी नहीं थे, घटित हुए हों, तो वह आधार अर्कनसास की विधि और उस स्थान की विधि जहां से वे घटित हुए हैं[2], दोनों ही विधियों द्वारा विवाह विच्छेद के लिए आधार होने चाहिएं।

इस अपेक्षा का अंतिम भाग विलुप्त कर दिया गया जब अर्कनसास ने अपनी शीघ्रतर विवाह-विच्छेद विधियों को अधिनियमित कर लिया।

3.35 इसी प्रकार कोई राज्य विवाह-विच्छेद आधारों को वाद स्थल[3] पर घटित होने वाले कार्यों तक सीमित कर सकता है। किन्तु साधारणतया जहां कोई न्यायालय विवाह-विच्छेद की मंजूरी के संबंध में अधिकारिता धारण करता है वहां वह सामान्यतया उस विषय पर अपनी विधि के अर्थात् उस स्थान की मौलिक विधि के प्रति निर्देश से विचार करता है।

VI. अन्य पद्धतियां

3.36 कुछ अन्य विधिक पद्धतियां उन आधारों की बाबत लागू होती हैं जिन पर उनके न्यायालयों द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए मंजूरी दी जा सकती है, अर्थात् वाद स्थल[4] या अधिवास की विधि जो कि नियमतः वाद स्थल के विधि के अनुरूप होती है। यह स्थिति सोवियत रूस, एस्टोनिया, लेटाविया, आस्ट्रिया, ग्रीस, डेनमार्क, नार्वे और कुछ लेटिन अमरीकी राज्यों में जैसे कि चिली स्ववेडोर और अरगुवे[4] में हैं। कुछ अन्य विधिक पद्धतियों के अन्तर्गत।

3.37 अधिकांश यूरोपीय और लेटिन अमरीकी विधियां, सिद्धांततः पति पत्नी की या पति की राष्ट्रिक विधि के पक्ष में विनिश्चय करती है। किन्तु वे वाद स्थल विधि के जहां से लोक नीति "लोकादेश" प्रश्नगत[4] हों, लागू करने की व्यवस्था उसमें उपान्तरण कर देती है। हम "लोकादेश" के विषय क्षेत्र पर बाद में विचार[5] करेंगे। कुछ देशों में लागू की गई राष्ट्रिक विधि।

VII. हेग कन्वेन्शन

3.38 इस सम्बन्ध में हेग कन्वेशन के आर्टिकल 6,7 और 19 अवलोकनीय हैं।

VIII. तर्काधार

3.39 इंग्लैण्ड की और अमेरीकी पद्धति के तर्काधार के बारे में प्रश्न उठाया जा सकता है। ऐसा मालूम होता है कि संयुक्त राज्य अमेरीका में वाद स्थल की विधि के उपयोग को विवाह-विच्छेद[6] की मात्र कानूनी प्रकृति होने के कारण न्यायोचित ठहराने का प्रयास किया गया। इस बारे में तर्क यह है कि कानूनों का प्रभाव आवश्यक रूप से प्रादेशिक होता है और यह ऐसा सिद्धांत है जो कि डी-आर जेन्टरे और अल्ट्रिकहयूबर जैसे प्रादेशिकता वाद के जन्मदाताओं तक चला गया है। वाद स्थल की विधि लागू करने के लिए कारण।

3.40 यह दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया गया है कि विवाह-विच्छेद उपचार विशेष या साम्यिक है और इसलिए प्रत्युपाय की स्थापना करने वाले राज्य के न्यायालयों के सिवाय उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। कभी कभी प्रादेशिकतावाद के लिए इस साधारण अभिप्रेरणा का भी आह्वान किया जाता है कि चूंकि "रैस" राज्य के भीतर अवस्थित होता है अतः राज्य का हित अवि भावी होता है। किन्तु इनमें से अधिकांश सिद्धांतों के अपने आलोचक रहे हैं। हमारे प्रयोजन के लिए यह आवश्यक नहीं है कि हम इन विभिन्न सिद्धांतों के गुणों और अवगुणों पर विचार करें। यदि पक्षकार किसी देश में अधिवास या राष्ट्रिकता का अर्जन करते हैं तो वे उस देश के जनप्रवाह में शामिल हो जाते हैं। इस बात का चाहे उचित सैद्धांतिक आधार कोई भी हो,

1. अर्कन० स्टेच्यूट, एन० 3505 (सी० एण्डएम० 1921) जो रेनसार द्वारा कन्फ्लिक्ट आफ लाज 1968 पृष्ट 547 में उद्धृत किया गया है।
2. मूलमवेन्द्र बनाम मूलनवेन्द्र (1919) अर्कन० 505, 208 एस० डब्ल्यू० 801।
3. निकोलास बनाम सेंडरस (1900) 52 ले अन-1493, 27 सेक्स० 966।
4. बुल्फ प्राइवेट इन्टरनेशनल ला, (1950) पृष्ठ 373।
5. आगे अध्याय 14।
6. राबेल, कम्पेरेटिव कान्फ्लिक्ट आफ लाज (1958), खण्ड 1, पृष्ठ 154।

किन्तु यह स्पष्ट है कि विधि के लागू करने में अत्यधिक व्यावहारिक सुविधा होती है। इससे वाद स्थल मौलिक विदेशी विधि[1] की खोज और उसके निर्वचन के लिए आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

निष्कर्ष

वे पहलू, जिन पर विचार किया जाना है।

3.41 ऊपर किए गए विवेचन को ध्यान में रखते हुए, अब हम उस प्रश्न पर विचार करें जोकि हमने इस अध्याय[2] के प्रारम्भ में तैयार किया है। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि उस प्रश्न का उत्तर देने में विभिन्न पहलुओं पर विचार किया जाना होगा :

(क) न्यायशास्त्र की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि सामान्य नियम यह है कि साधारणतया कोई न्यायालय अपनी विधि[3] लागू करता है। इस प्रकार, यदि विदेशी न्यायालय ने अपनी स्वयं की विधि अपनाई है तो उसने साधारण पद्धति का अनुसरण किया है। यदि हमसे यह अपेक्षा की जाती है कि हम उस पद्धति से अलग हो जाएं तो उस बारे में कुछ ठोस कारण देने की आवश्यकता प्रतीत होगी।

(ख) समाजविज्ञान की दृष्टि से ऐसा कोई न्यायालय, जिसमें पक्षकार अभ्यासतः निवासी या अधिवासी है अपनी स्वयं की विधि[3] लागू करता है। इसलिए यदि विदेशी न्यायालय ने, अपने उस सम्प्रदाय की विधि को अपनाया है जिसमें कि पक्षकारों ने अपना आवास बनाया है, जैसी कि वह विधि संबंधित देश के विवाह-विच्छेद से सबंधित विधि में प्रतिविम्बित होती है तो ऐसा होने पर यह अपेक्षा करना समुचित होगा कि उस देश के न्यायालयों को विवाह विषयक अनुतोष के आधारों के बारे में किसी अन्य देश की मौलिक विधि लागू करनी चाहिए।

(ग) व्यावहारिक पहलू की दृष्टि से किसी न्यायालय के लिए वाद स्थल की विधि को अभिनिश्चित करना सरल होता है और वह उस विधि को लागू करता है। इसलिए हमारा विचार है कि वर्तमान स्थिति में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं है।

1. ऊपर पैरा 3.23 (इंगलैंड के बारे में) देखिए।
2. ऊपर पैरा 3.2 देखिए।
3. रोबिन्सन का मामला (1760) इंगलिश रिपोर्ट 717 पैरा 3.33 देखिए।

अध्याय 4

विदेशी निर्णयों की मान्यता के बारे में भारतीय विधि

I. प्रारम्भिक

4.1 इस अध्याय में, हम संक्षेप में विदेशी-विवाह विच्छेदों की मान्यता के विषय पर भारतीय विधि के बारे में विचार करेंगे। हम पहले ही बता चुके हैं[1] कि भारतीय स्टेच्यूट में विदेशी विवाह-विच्छेदों की मान्यता के बारे में कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध नहीं है। विदेशी निर्णयों के प्रभाव के बारे में कतिपय साधारण उपबन्ध हैं जिन पर कि अब हम विचार करेंगे। प्रारम्भिक।

ऐसे उपबन्धों के लिए आवश्यकता तो सुस्पष्ट है। एक साम्राज्य के अधीन (अर्थात् रोमन साम्राज्य के अधीन) विभिन्न प्रांतों के बीच शासक विधान, अधिकारिता का वितरण और विनियमन कर सकता है, किन्तु कोई प्रादेशिक विधान ऐसी अधिकारिता नहीं दे सकता जो कि किसी विदेशी न्यायालय को उन विदेशियों की बाबत माननी चाहिए जिनकी उस सत्ता के प्रति, जो इस प्रकार विधान बनाती है, कोई निष्ठा या आज्ञानुवर्तन नहीं है।

ऐसी वैयक्तिक कार्रवाई में, जिसको अधिकारिता के इन हेतुकों में से कोई लागू नहीं होता, उस विदेशी न्यायालय द्वारा जिसकी अधिकारिता के समक्ष प्रतिवादी ने अपने को किसी भी प्रकार प्रस्तुत नहीं किया है अनुपस्थिति में सुनवाई गई डिक्री अन्तर्राष्ट्रीय विधि में पूर्णतया अकृत होती है। वह उसका पालन करने के लिए किसी भी प्रकार की किसी बाध्यता के अधीन नहीं होता और उसे[2] प्रत्येक राष्ट्र के न्यायालयों द्वारा, "सिवाय (जब विशेष स्थानीय विधान द्वारा प्राधिकृत किया गया हो)" उस न्यायालय वाले देश में, जिसके न्यायालय द्वारा उसे सुनाया[2] गया है, मात्र अकृतता के रूप में माना जाना चाहिए।

II. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13

4.2 पहले हम सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 के प्रति निर्देश कर दें। वह विदेशी निर्णयों के निश्चायक प्रभाव के बारे में साधारण उपबंध है। यह धारा केवल तभी प्रवृत्त होती है जब कई शर्तें पूरी की जाती हैं और उनमें से सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह शर्त है कि विदेशी न्यायालयों को सक्षम अधिकारिता वाला न्यायालय अवश्य होना चाहिए। इसलिए जब कि यह धारा भारतीय न्यायालयों को, विदेशी निर्णयों को मान्यता देने के लिए और कतिपय मामलों में उनको प्रवर्तित करने के लिए सशक्त करती है, यह इस बात की भी उपधारणा करती है कि विदेशी न्यायालय सक्षम न्यायालय होना चाहिए और इस प्रश्न का कि किन परिस्थितियों में विदेशी न्यायालय को सक्षम न्यायालय माना जाना है, उस धारा में उत्तर नहीं दिया गया है, यह धारा इस प्रकार है: सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13।

"13. विदेशी निर्णय एतद्द्वारा उन्हीं पक्षकारों के बीच या उसी हक के अधीन मुकदमा करने वाले ऐसे पक्षकारों के बीच, जिनने व्युत्पन्न अधिकार के अधीन वे या उनमें से कोई दावा करते हैं, प्रत्यक्षत: न्यायनिर्णीत किसी विषय के बारे में वहां के सिवाय निश्चायक होगा,— विदेशी निर्णय कब निश्चायक नहीं होता।

(क) जहां कि वह सक्षम अधिकारिता वाले न्यायालय द्वारा नहीं सुनाया गया है,

(ख) जहां कि वह मामले के गुणागुण के आधार पर नहीं दिया गया है,

(ग) जहां कि कार्यवाहियों के तथ्य से यह प्रतीत होता है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अशुद्ध बोध पर या भारत की विधि को उन मामलों में, जिनको वह लागू है, मान्यता देने से इन्कार करने पर आधारित है,

(घ) जहां कि वे कार्यवाहियां, जिसमें वह निर्णय अभिप्राप्त किया गया ा, नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध है,

1. ऊपर अध्याय 1।
2. गुरुदयाल बनाम फेटीकोट का राजा, आई० एल० आर० 22 कलकत्ता 222 (पी० सी०) (लार्ड सेलबोर्न)।

(ङ) जहां कि वह कपट द्वारा अभिप्राप्त किया गया है,

(च) जहां कि वह भारत में प्रवृत्त किसी विधि के भंग पर आधारित दावे को ठीक ठहराता है।"

पुरानी संहिता की धारा 14।

4.3 इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 में विदेशी निर्णयों[1] से संबंधित धारा 14—निम्न प्रकार से प्रारम्भ होती है :—

"14. कोई भी विदेशी निर्णय ब्रिटिश भारत में किसी वाद के लिए वर्जन के रूप में प्रवर्तित नहीं होगा . . ."।

1882 की संहिता में इस धारा के नकारात्मक रूप में यह स्पष्ट कर दिया कि यह पूर्व न्याय[2] के बारे में उपबन्ध करने वाली धारा के साधारण उपबन्धों के लिए अपवाद थी। यदि विदेशी निर्णयों से संबंधित इस धारा के उपबंध न होते तो पूर्व न्याय का साधारण वर्णन लागू हुआ होता[3]।

धारा 12—व्यापक उपबन्ध।

4.3क जैसे ही कोई सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 का अवलोकन करता है, वह उसकी व्यापक प्रकृति और साथ ही उसकी संक्षिप्तता और प्रमिताज्ञा के प्रति आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। इन छह अपवादों में से प्रत्येक भारतीय न्यायालय के हाथों में ऐसा प्रभावी उपकरण प्रदान करता है जिसके द्वारा ये न्यायालय किसी भी विदेशी निर्णय को मान्यता देने से वैधतः इन्कार कर सकते हैं।

4.3ख यह भी उल्लेखनीय है कि पूर्व न्याय के कामन ला सिद्धांत विदेशी निर्णयों को भी वैसे ही लागू हैं जैसे वे हमारे अपने न्यायालयों के निर्णयों को लागू हैं। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13[4] उसी संहिता की धारा 11 के विस्तृत उपबन्धों को, जो कि यदि कोई विनिर्दिष्ट उपबन्ध न होता तो विदेशी निर्णयों को भी लागू किए गए होते, विशेषित करने की दृष्टि से आवश्यक हो गई।

सक्षम न्यायालय।

4.4 अब हम धारा 13 के कुछ पहलुओं का उल्लेख कर दें। यह सुस्थापित है कि जब वर्तमान धारा 13(ग)[5] "अन्तर्राष्ट्रीय विधि" का उल्लेख करती है और जब वर्तमान धारा 13(क) सक्षम अधिकारिता के न्यायालय का उल्लेख करती है। तो उससे विदेशी न्यायालय की न केवल अन्तःराज्यक्षेत्रीय सक्षमता अपितु राज्यक्षेत्रीत सक्षमता [6-7] भी प्रकाशित होती है।

कब निश्चायक।

4.5 संहिता की धारा 13 का यह उपबन्ध कि कोई विदेशी निर्णय निश्चायक है, अवलोकनीय है, **फुलर बनाम फुलर**[8] में लार्ड चांसलर ब्राउघम ने कहा था "विदेशी वाद के उनुक्रम में चाहे जो भी अनियमितताएं या गलतियां की गई हों", जो कि कपट की कोटि में नहीं आती हैं, उनके बारे में "इंग्लैण्ड के चांसरी कोर्ट को जमैका के चांसरी कोर्ट की डिक्रियों का पुनर्विलोकन करने के लिए केवल इस कारण से कि वे तथ्यों की अज्ञानता या विधि की भूल पर अग्रसर हुई थीं, अपील न्यायालय के रूप में कोई अधिकारिता नहीं थी"।

ये कथन "निश्चायक" शब्द का महत्व दर्शित करते हैं वह शब्द यह भी दर्शित करता है कि निर्णय तब तक अनधिक्षेपणीय है, जब तक कि निस्संदेह कोई विनिर्दिष्ट दूषक परिस्थितियां विद्यमान न हों।

परव्यक्तियों पर प्रभाव।

4.6 मद्रास वाले मामले[9] में न्या० होलोवे ने और कलकत्ता वाले मामले में[10] मुख्य न्या० सर बारनेस पीकोक ने विवाह-विच्छेद संबंधी मामलों में निर्णयों की बाबत और इस बात का कि वे साक्ष्य में कहां तक ग्राह्य थे, विधि का विस्तृत रूप से पुनर्विलोकन किया था। मुख्य न्या० सर बारनेस पीकोक ने यह मत व्यक्त किया था :

". . . . . .विवाह-विच्छेद के लिए वाद में डिक्री का प्रभाव पति और पत्नी के संबंध को समाप्त करना है। यह सभी व्यक्तियों के लिए निश्चायक है कि पक्षकार अब पति और पत्नी नहीं रहे हैं,

---

1. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1882 की धारा 14।
2. वर्तमान संहिता की धारा 11, 1882 की संहिता की धारा 13।
3. आगे पैरा 4.4।
4. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13।
5. ऊपर पैरा 4.2।
6. **मोहन लाल बनाम प्रेमसुक**, ए० आई० आर० 1956, नागपुर, 273।
7. **अब्दुल वजीद बनाम विश्वनाथन**, ए० आई० आर० 1953, मद्रास 361।
8. **फुलर बनाम फुलर** (1831) 1 मिल एण्ड के० 297, 39 ई० आर० 693।
9. **यारकालम्मा नागम्मा** बनाम **ए० नारेम्मा**, (1864-65) 2 एम० एच० सी० आर० 276।
10. **कन्हैया लाल बनाम राधा चरण** (1867), 7 डब्ल्यू० आर० 338, 344 मैक० एल० जे० सप० जिल्द 662 (पी० बी०)।

किन्तु यह पर-व्यक्तियों के विरुद्ध निश्चायक या प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य नहीं है कि वह हेतुक जिसके लिए डिक्री सुनाई गई थी, विद्यमान था, उदाहरण के लिए, यदि क और ख के बीच डिक्री ख और ग के जारकर्म के आधार पर मंजूर की गई थी तो वह विवाह-विच्छेद के बारे में निश्चायक होगी, किन्तु वह ग के विरुद्ध इस बात का प्रथम-दृष्ट्या साक्ष्य नहीं होगी कि वह ख के साथ जारकर्म का दोषी था, जब तक कि वाद में पक्षकार न हो।

वाद के लिए वर्जन।

4.7 किसी विदेशी निर्णय का, जबकि वह सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13 के अधीन निश्चायक हो, भारत[1] में वाद के लिए वर्जन के रूप में प्रतिरक्षा के रूप में अभिवचन किया जा सकता है, परन्तु यह तब जब कि वह धारा 13 द्वारा यथा विहित गुणागुण के आधार पर दिया गया हो।

नैसर्गिक न्याय।

4.8 इस बात पर ध्यान दिया जाए कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13(घ) भी उपबन्ध करती है कि कोई विदेशी निर्णय निश्चायक नहीं है जहां कि वे कार्यवाहियां, जिनमें वह निर्णय अभिप्राप्त किया गया था, नैसर्गिक न्याय के विरुद्ध हैं। उस धारा में "नैसर्गिक न्याय" पद प्रक्रिया के रूप के प्रति निर्दिष्ट करती है, न कि गुणागुण[3] के प्रति। किसी अवयस्क के लिए संरक्षक नियुक्त करने में असफलता विदेशी निर्णय को इस धारा[4] के अधीन अप्रवर्तनीय बना सकती है।

"सिवाय" शब्द का प्रभाव।

4.9 यह बहुत स्पष्ट नहीं है कि वहां विदेशी निर्णय का क्या प्रभाव होता है जहां कि निर्णय धारा 13 के खंड (क) से लेकर (च) तक में उल्लिखित एक से अधिक तत्वों द्वारा दूषित कर दिया जाता है। निर्णय निश्चित रूप से निश्चायक नहीं है, —जैसा कि धारा 13 स्वयं अधिनियमित करती है। किन्तु इसकी कोई सुसंगतता भी है क्या इस बारे में यह धारा बताती है? इतना अवश्य स्पष्ट है कि धारा 13 वहां लागू नहीं होगी जहां कि दूषण परिस्थितियां विद्यमान हैं और निर्णय निश्चायक नहीं हैं। किन्तु वहां सुसंगता की बाबत क्या स्थिति होगी जहां दूषक तत्व विद्यमान हैं? सिद्धान्तः यह प्रतीत होता है कि वहां निर्णय की पूरी तरह उपेक्षा की जानी चाहिए।

इस धारा में 'सिवाय' शब्द इस संदर्भ में महत्वपूर्ण है। 'जहां कि' शब्द, —समरूप शब्द—के अभिप्राय की बाबत लार्ड एम० आर० एशर ने कार्ले[5] में यह कहा था :—

"जब आपके पास इंगलिश भाषा में "तब तक" शब्द है तो इसका अभिप्रायः यह होगा कि यदि कोई बात होती है तो जो कुछ पहले कहा गया है, लागू नहीं होगा।"

अंतर्राष्ट्रीय विधि के विरुद्ध निर्णयों को मान्यता के बारे में भारतीय विधि।

4.10 अन्तर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के विरुद्ध विदेशी निर्णय भारत[6] में अधिक्षेपणीय हो सकता है। इस सामान्य उपबन्ध को भी सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 13(ग) द्वारा मान्यता दी गई है।

संहिता के अन्य उपबंध।

4.11 इस बात पर ध्यान दिया जाए कि जब कि संहिता की धारा 13 सामान्यतया विदेशी निर्णयों की मान्यता के प्रयोजन के लिए सुसंगत है, यह प्रवर्तनीयता के बारे में उपबन्ध नहीं करती है। किसी व्यक्ति को वह डिक्री अभिप्राप्त करने की दृष्टि से, जो कि निष्पादित की जा सकती है, विदेशी निर्णय पर वाद फाइल करना होता है।

सिविल प्रक्रिया संहिता में कतिपय विदेशी निर्णयों के सीधे प्रवर्तन के बारे में कतिपय उपबन्ध[7] भी हैं। किन्तु ये उपबन्ध विवाह-विच्छेदों की बाबत तात्विक नहीं हैं क्योंकि विवाह-विच्छेद के निर्णय या विधिक पृथक्करण की मंजूरी देने वाले निर्णय के 'प्रवर्तन' की साधारणतया आवश्यकता नहीं होती है।

1. चोकालिंगम बनाम दुरियास्वामी, ए० आई० आर० 1928 मद्रास 327, 336।
2. सन्ता सिंह बनाम बल्ला सिंह (1919) पंजाब, अभिलेख सं० 14, पृष्ठ 30।
3. रामा सिनोई बनाम हालागना (1918) आई० एल० आर० 41 मद्रास 205।
4. गोविन्दन बनाम लक्ष्मी भारती, ए० आई० आर० 1964 केरल 244, 248, पैरा 22।
5. दी कार्ले 15 (1892) प्रोबेट 324, 68 ला टाइम्स रिपोर्ट स 149।
6. (क) नल्लातम्बी बनाम पोन्नूस्वामी, आई० एल० आर० 2 मद्रास 400।
   (ख) हिन्दे बनाम पोन्नाह, आई० एल० आर० 4 मद्रास 359।
   (ग) बिक्रम बनाम बीर, (1888) पी० आर० 191।
   (घ) क्रिश्चियन बनाम देलानी, (1900) 3 सी० डब्ल्यू० एन० 614।
7. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 44 और 44 क।

एक पक्षीय निर्णय ।

4.12 वह डिक्री भी जो कि विदेशी न्यायालय द्वारा अनुपस्थिति में सुनाई जाती है, उस न्यायालय वाले देश में विधिमान्य और निष्पादनीय है जिसके द्वारा वह, जब वह विशेष स्थानीय विधान[1] द्वारा प्राधिकृत हो, सुनाई गई थी। ऐसे विदेशी न्यायालय द्वारा पारित डिक्री, जिसकी अधिकारिता में निर्णीत ऋणी ने स्वयं को प्रस्तुत नहीं किया हो, केवल तभी पूर्ण अकृत है, जब स्थानीय विधान मंडल ने विदेशियों पर साधारणतया या विनिर्दिष्ट परिस्थितियों के अधीन अन्तर्देशीय न्यायालयों को अधिकारिता प्रदान नहीं की थी। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20(ग) भारत में किसी भी न्यायालय को विदेशियों के सम्बन्ध में अधिकारिता प्रदान करती है, यदि वाद हेतुक उस न्यायालय को अधिकारिता के भीतर उत्पन्न हो। अतः ऐसी परिस्थितियों में किसी विदेशी के विरुद्ध पारित डिक्री पूर्णतः अकृत[1] नहीं है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि प्रश्नगत डिक्री इस देश से बाहर के न्यायालयों में निष्पादनीय नहीं है।

III. साक्ष्य अधिनियम

साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 ।

4.13 सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों के बारे में इतना ही है। आगे हम भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 41 के प्रति निर्देश करेंगे, जो कि इस प्रकार है:—

"41. किसी सक्षम न्यायालय के प्रोबेट-विषयक, विवाह-विषयक नावधिकरण विषयक या दिवाला विषयक अधिकारिता के प्रयोग में दिया हुआ अन्तिम निर्णय, आदेश या डिक्री, जो किसी व्यक्ति को, या से कोई विधिक हैसियत प्रदान करती या ले लेती है या जो सर्वतः न कि किसी विनिर्दिष्ट व्यक्ति के विरुद्ध किसी व्यक्ति को ऐसी किसी हैसियत का हकदार या किसी विनिर्दिष्ट चीज का हकदार घोषित करती है, तब सुसंगत है जब कि किसी ऐसी विधि हैसियत, या किसी ऐसी चीज पर किसी ऐसे व्यक्ति के हक का अस्तित्व सुसंगत है।

ऐसा निर्णय, आदेश या डिक्री इस बात का निश्चायक सबूत है—

कि कोई विधि हैसियत, जो वह प्रदत्त करती है, उस समय प्रोद्भूत हुई जब ऐसा निर्णय, आदेश या डिक्री को प्रवर्तन में हुई,

कि कोई विधि हैसियत, जिसके लिए वह किसी व्यक्ति को हकदार घोषित करती है उस व्यक्ति को उस समय प्रोद्भूत हुई जो समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय वह उस व्यक्ति को प्रोद्भूत हुई,

कि कोई विधि हैसियत, जिसे वह किसी ऐसे व्यक्ति से ले लेती है उस समय खत्म हुई जो समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय से वह हैसियत खत्म हो गई थी या खत्म हो जानी चाहिए,

और कि कोई चीज जिसके लिए वह किसी व्यक्ति को ऐसा हकदार घोषित करती है उस व्यक्ति को उस समय संपत्ति थी जो समय ऐसे निर्णय, आदेश या डिक्री द्वारा घोषित है कि उस समय से वह चीज उसकी सम्पत्ति थी या होनी चाहिए।"

साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 के अधीन न्यायालय अवश्य ही सक्षम न्यायालय होना चाहिए।

4.14 इस बात पर ध्यान दिया जाए कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 13 के अधीन, साक्ष्य अधिनियम,[2] की धारा 41 भी यह अधिधारणा करती है कि वह न्यायालय, जो कि निर्णय की उद्घोषणा करता है, अवश्य ही सक्षम न्यायालय होना चाहिए। अतः इस धारा की उपयोज्यता न्यायालय की सक्षमता के प्रश्न के अवधारण पर निर्भर करती है और जहां संबंधित न्यायालय विदेशी न्यायालय है, वहां इस प्रश्न का अवधारण हमें अनिवार्यतः मान्यता से संबंधित विधि पर विचारार्थ अग्रसर करता है, क्योंकि विदेशी न्यायालय राज्यक्षेत्रातीत अर्थ में भी अवश्य ही सक्षम न्यायालय होना चाहिए। यह बात बहुत से न्यायिक विनिश्चयों[3] द्वारा सुस्थापित हो चुकी है। दूसरे शब्दों में, विदेशी न्यायालय ने भारतीय विधि द्वारा मान्य कसौटी के आधार पर अधिकारिता का प्रयोग कर लिया होना चाहिए।

धारा 41 का निर्वचन।

4.15 साक्ष्य अधिनियम की धारा 41 पर किए गए न्यायिक विनिश्चयों से प्रकट होने वाली कुछ प्रतिपादनाएं इस प्रक्रम पर सुविधा के लिए बता दी जाएं:—

1. लालजी राजा बनाम हंसराज नाथूराम, ए० आई० आर० 1971 एस० सी० 974, 977 ।
2. ऊपर पैरा 4.13 ।
3. आगे पैरा 4.15 ।

(क) यह सुस्थापित है कि धारा 41 में, "सक्षम न्यायालय" पद से किसी भी देश का न्यायालय अभिप्रेत है, यदि वह न्यायालय ऐसा निर्णय पारित करने के लिए, जो इस धारा में निर्दिष्ट किया गया है, अन्यथा सक्षम है :

बहुत से मामलों में यह अभिनिर्धारित[1] किया गया है कि विदेशी न्यायालयों के निर्णय धारा 41 के विस्तार क्षेत्र से अपवर्जित नहीं है। मुम्बई वाले एक मामले[2] में, यह प्रतिपादना मुख्य न्या० बीमोन्ट और न्या० बी० जे० वाडिया द्वारा ठीक मानी गई थी, यद्यपि उस मामले में विवाद्य विशिष्ट निर्णय के बारे में अभिनिर्धारित किया था कि वह धारा 41 के क्षेत्र से बाहर है।

(ख) यह भी विवादग्रस्त नहीं है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री देने वाले विवाह विषयक न्यायालय का निर्णय, धारा 41 के आधार पर, संबंधित पक्षकारों की प्रास्थिति के बारे में सम्पूर्ण विश्व पर, आबद्धकर है परन्तु यह तब जब कि धारा 41 में उल्लिखित अन्य शर्तों की पूर्ति[3] हो गई हो।

(ग) निर्णय केवल प्रास्थिति की बाबत निश्चायक है, किन्तु उन आधारों की बाबत नहीं जिन पर वह आधारित[4] है।

(घ) यदि कोई निर्णय धारा 41 के अन्तर्गत आने वाला माना जाता है तो वह धारा उस निर्णय[5] द्वारा प्रदत्त या घोषित विधिक प्रकृति के सबूत से अभिमुक्ति प्रदान कर देती है।

IV. विवाह विषयक विधान

विवाह विषयक अधिकारिता से संबंधित अधिनियमितियां।

4.16 अभी तक हमने विदेशी निर्णयों को लागू भारतीय कानून के साधारण उपबन्धों के बारे में चर्चा की है। किन्तु मान्यता के वे नियम कौन से हैं जो विवाह-विच्छेद के निर्णयों को विनिर्दिष्ट रूप से लागू हैं ? सर्व प्रथम हमें विवाह विषयक मामलों से संबंधित अधिनियमितियों में ऐसे नियमों की खोज करनी चाहिए। भारत में विवाह विषयक अधिकारिता का प्रयोग न्यायालयों द्वारा बहुत सी अधिनियमितियों के अधीन किया जाता है और लागू अधिनियमितियां, अधिकांश मामलों में पक्षकारों के धर्म पर निर्भर करती हैं। काल क्रम से मुख्य अधिनियमितियां निम्नलिखित हैं :—

(क) दी कन्वर्टस मैरिज डिजोलूशन ऐक्ट, 1866 (1866 का 21) जिसके अधीन किसी विवाह का विघटन ईसाई मत के संपरिवर्तक द्वारा तब अभिप्राप्त किया जा सकता है, यदि उसकी पत्नी या पति उस धर्म में संपरिवर्तित होने से इन्कार करता/करती है।

(ख) पारिसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 (1936 का 3) जो पारसियों में विवाह विच्छेद से संबंधित है।

(ग) मुस्लिम विवाह-विघटन अधिनियम, 1939, जो कि कतिपय विनिर्दिष्ट आधारों पर अर्जी देने वाली मुस्लिम पत्नी की प्रेरणा पर विवाह-विच्छेद तक सीमित है।

(घ) विशेष विवाह अधिनियम, 1954, जो कि समुचित रूप से विचार करने पर उस अधिनियम के अधीन विवाह करने वाले व्यक्तियों को ही लागू है।

(ङ) हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 39), जो कि हिन्दुओं को लागू है।

(च) विदेशी विवाह अधिनियम, 1969[6]।

विदेशी विवाह अधिनियम, 1969।

4.17 हमें इन अधिनियमों के उपबन्धों को यहाँ पुनः प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु हम संक्षेप में विदेशी विवाह अधिनियम, 1969 के बारे में चर्चा करेंगे जो कि विशेष रूप से अवलोकनीय है। इस अधिनियम में उन भारतीय नागरिकों के विवाह की बाबत उपबन्ध किए गए हैं जो कि विदेश में हैं। "विदेशी विवाह" पद को अभिव्यक्त रूप से परिभाषित नहीं किया गया है, किन्तु अधिनियम 1 की धारा 4

---

1 (क) ए० आई० आर० 1950, मैसूर 57, पैरा 4।
(ख) ए० आई० आर० राजस्थान, 149, 152।
(ग) ए० आई० आर० मद्रास 410, 421।

2 सेस्स बनाम मेस्सा (1938) म० बाम्बे ला रिपोर्ट (87) ए० आई० आर० बाम्बे 394, 396, 397 (मु० न्या० बीमोन्ट और न्या० बी० जे० वाड़िया)। (जिसके द्वारा चनमलप्पा, (1911) आई० एल० आर० 35, बाम्बे 139 में न्या० चन्दावरकर के दृष्टिकोण का अनुमोदन किया गया था।

3 मा० पो० खिन बनाम मा० शिन, (1933) आई० एल० आर० 11 रंगून 19।

4 डी० जी० सहास्रबुद्धे बनाम किनचन्द देवचन्द एण्ड कं० आई० एल० आर० (1947) नागपुर 85।

5 विश्वनाथ बनाम अब्दुल वलीद, ए० आई० आर० 1963 एस० सी० 1

6 आगे पैरा 4.17 देखिए।

में अन्तर्निहित है कि वह पद विदेश में विवाह अधिकारी द्वारा कराए गए या उसके समक्ष हुए उन पक्षकारों के बीच विवाह के प्रति निर्देश करता है, जिनमें से कम से कम एक भारत का नागरिक है।

इस अधिनियम द्वारा केन्द्रीय सरकार को अपने राजनयिक या कौंसलीय अधिकारियों में से किसी को किसी विदेश के लिए विवाह अधिकारी नियुक्त करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। धारा 5 के अनुसार विवाह करने के आशय की सूचना विवाह अधिकारी को दी जानी होती है और विवाह अनुष्ठापित किए जा सकने के पूर्व निवास के बारे में कतिपय अन्य अपेक्षाएं होती हैं।

अधिनियम यह उपबन्ध करता है कि विदेशी विवाहों के सम्बन्ध में विवाह विषयक अनुतोष, विशेष विवाद अधिनियम, 1954 के उपबन्धों द्वारा, उनके कतिपय उपांतरणों सहित, जो कि हमारे प्रयोजन के लिए तात्विक नहीं हैं, शासित होगा।

केन्द्रीय सरकार धारा 23 द्वारा यह घोषणा करने के लिए भी सशक्त है कि "किसी विदेश में प्रवृत्त विधि के अधीन" अनुष्ठापित विवाह को भारत के न्यायालयों द्वारा विधिमान्य माना जाएगा, यदि केन्द्रीय सरकार का समाधान हो जाता है कि विदेशी विधि में विदेशी विवाह अधिनियम के समान उपबन्ध हैं। विदेशी विवाह विच्छेद की मान्यता के बारे में इस अधिनियम में कोई उपबन्ध नहीं है।

संक्षेप में यह अधिनियम विदेशी तत्व वाले विवाहों के बारे में अनिवार्यतः उपबन्ध तो करता है किन्तु विदेशी विवाह-विच्छेद की मान्यता के बारे में हमें कुछ नहीं बताता है।

अन्य विवाह विधियां।

4.18 विभिन्न समुदायों के व्यक्तियों के विवाहों से संबंधित विभिन्न अधिनियमितियां भी इस रूप में विदेशी-विवाह विच्छेदों की मान्यता के विषय पर मौन[1] हैं और विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण[2] के विदेशी निर्णयों को मान्यता के लिए उनमें से कोई प्रत्यक्ष उपबन्ध नहीं है।

इसलिए विधिक स्थिति का अधिनिश्चय करने की दृष्टि से, इस विषय पर हुए न्यायिक विनिश्चयों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है।

V. न्यायालयों द्वारा लागू किए गए नियम

इंग्लैंड की विधि अपनाई गई।

4.19 विदेशी विवाह-विच्छेदों की मान्यता के विनिर्दिष्ट प्रश्न पर भारतीय निर्णयज विधि इतनी प्रचुर माला में नहीं है जितनी इंग्लैण्ड में है, किन्तु जो है उसको ध्यानपूर्वक देखने से यह दर्शित होता है कि साधारणतया इस क्षेत्र में इंग्लैण्ड के नियमों को अपनाया गया है। निर्णयज विधि की परीक्षा इंगित होती है कि यह कहना सही होगा कि साधारणतयः भारतीय न्यायालय, विधि वषम्य के क्षेत्र से संबंधित मामलों में इंग्लण्ड के न्यायालयों द्वारा कामन ला में अपनाए गए दृष्टिकोण को अपनाते हैं। इस बात पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि **सत्या** बनाम **तेजसिंह**[3] में, जिसके प्रति हम पहले ही निर्देश[4] कर चुके हैं, उच्चतम न्यायालय के निर्णय में अन्य प्रकार की विविध सामग्री के अतिरिक्त, इंग्लैण्ड की विधि पर व्यापक चर्चा की गई थी।

अधिकांश न्यायिक विनिश्चय प्रास्थिति के विषय में अधिवास को प्राथमिक महत्व देते हैं।

विवाह-विच्छेद का एक मामला।

4.20 **नूरजहां** बेगम बनाम **यूजेना टिसेंस**[5] में एक रूसी स्त्री अपने रूसी पति को यूरोप में छोड़ कर भारत आ गई थी और उसने इस्लाम ग्रहण कर लिया था एवं इस्लाम धर्म में परिवर्तित होने के लिए पति द्वारा इन्कार करने पर उससे विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम (1877 का 1) (वह अधिनियम जो उस समय प्रवृत्त था) की धारा 42 के अधीन उच्च न्यायालय से इस आशय की घोषणा चाही कि उसका विवाह उसकी स्वीय विधि के अनुसार विघटित किया जा चुका था। इस प्रयोजन के लिए उसने मुस्लिम विधि के उस नियम का आश्रय लिया जिसके अधीन इस्लाम में संपरिवर्तक अपने विवाह के विघटन के लिए हकदार हो जाता है, यदि उसके द्वारा प्रस्थाना की जाने पर पति या पत्नी मुसलमान होने से इंकार करे। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उसे उन पक्षकारों के बोध जो भारत में अधिवसित नहीं थे, विवाह विघटित करने की घोषणा करने की

1. ऊपर पैरा 4.16 देखिए।
2. आगे अध्याय 5-6 भी देखिए।
3. **सत्या** बनाम **तेजसिंह**, ए० आई० आर० 1975 एस० सी० 105—(1975) 13 म० नि० प० 894।
4, ऊपर अध्याय 1।
5. **नूरजहां** बेगम बनाम **यूजीना टिसेन्स**, आई० एल० आर० (1942) 2 कल 185।

अधिकारिता नहीं है और आगे उसने मुस्लिम विधि के उस नियम की विशेषता बताई जो न तो भारत की साधारण विधि और न प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अनुसार है। यह विनिश्चय दर्शित[1] करता है कि विवाह-विच्छेद के बारे में अधिकारिता साधारणतः अधिवास के अभाव में भारतीय न्यायालयों द्वारा ग्रहण नहीं की जाती है।

4.21 विवाह विच्छेद से भिन्न कार्यवाहियों में भी अधिवास तात्विक हो सकता है।

अन्य मामलों में अधिवास का तात्विक होना।

दत्तक ग्रहण की बाबत **बसंत** बनाम **दत्तोबा**[2] में मुम्बई उच्च न्यायालय के विनिश्चय के प्रति और **नटराज** बनाम **सुब्बाराथन**[3] में प्रिवी कौंसिल के विनिश्चय के प्रति निर्देश किया जा सकता है। इन दोनों मामलों में विदेशी न्यायालयों के निर्णय इस घोषणा से संबंधित थे कि प्रत्येक मामले में दावेदार दत्तक ग्रहण करने वाली विधवा की अधिवास विधि के अनुसार विधिमान्य रूप से दत्तक ग्रहण किया गया था।

प्रिवी कौंसिल वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पांडिचेरी में उस न्यायालय का निर्णय, जिसने दत्तक ग्रहण की वैधता को, उसके विधवा की अधिवास विधि के अनुसार किए जाने के रूप में, मान्यता दी थी, "उन सभी विषयों में, जिनके बारे में उसने मद्रास स्थित वाद में चर्चा की थी, प्रभावपूर्ण था।" चूंकि अपीलार्थी पांडिचेरी में वाद में पक्षकार नहीं थे, अतः इस मामले में पूर्व न्याय का कोई प्रश्न नहीं था। मामले की परिस्थितियों में, न्यायाधीशों की यह राय थी कि "फ्रांस का निर्णय ठोस और अखंडित साक्ष्य के रूप में माना जाना चाहिए"। स्पष्ट है कि यह निष्कर्ष साक्ष्य अधिनियम की धारा 13 के प्रतिनिर्देश से निकाला गया था जिसके अधीन वह "संव्यवहार या दृष्टांत" जिसके द्वारा किसी अधिकार का प्रयोग किया जाता है या उसको प्राख्यात किया जाता है, सुसंगत है।

4.22 कभी कभी अधिवास का प्रश्न भारत में अन्तर्राज्यीय विधि वैषम्य के बारे में भी उठाया जाता है। इस प्रकार, **लक्ष्मी नारायण** बनाम **फतह बहादुर**[4] में यह प्रश्न उठा था कि क्या अवध प्रान्त से संबंधित कोई व्यक्ति, जो अवध लैण्ड रेवेन्यू ऐक्ट (1876 का 17) के उपबन्धों के अधीन "निर्राहित" स्वामी घोषित, किए जाने के कारण संविदा करने के लिए निर्राहित था, इलाहाबाद उच्च न्यायालय की अधिकारिता के भीतर, उत्तर पश्चिमी प्रान्त में संपत्ति का विधिमान्य अनन्य संक्रामण कर सकता था।

भारत में अन्तर्राज्यीय विधि-वैषम्य और अधिवास की सुसंगति।

प्राइवेट अन्तर्राज्यीय विधि के सिद्धांतों को लागू करके और डायसी, स्टोरी और अन्य लेखकों के विचारों की चर्चा करने के पश्चात्, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि "अधिवास की विधि" के अधीन असमर्थता का विस्तार, संबंधित व्यक्ति द्वारा की गई संविदाओं तक होता है, चाहे वह संविदा अवध प्रान्त से बाहर की सम्पत्ति से संबंधित हो।

इसके अतिरिक्त **शंकर विश्णु** बनाम **मानक लाल हरिदास**[5] के मुम्बई वाले मामले में, मुम्बई में उपगत ऋण के बारे में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि वह उन कार्यवाहियों के अधीन उन्मोचित नहीं हुआ था जो कि सेन्ट्रल प्रोविन्सेस डेट कान्सिलेशन ऐक्ट, 1933 के अनुसार की गई थीं, क्योंकि मुम्बई विधि संविदा की समुचित विधि थी और इसलिए उन्मोचन उस पद्धति द्वारा संभव नहीं था, जिसे उचित विधि द्वारा मान्यता नहीं दी गई थी।

शंकर विष्णु वाले मामले में, मु० न्या० बीमोन्ट द्वारा व्यक्त मत उद्धृत किए जा सकते हैं--"निःसंदेह मुम्बई प्रान्त और मध्य प्रान्त दोनों ही ब्रिटिश भारत के भाग हैं, किन्तु मेरी राय में, जहां ब्रिटिश भारत के एक प्रान्त की विधि अन्य प्रान्तों की विधि से सुभिन्न है, वहां दोनों प्रान्तों को (समुचित विधि के) इस नियम के प्रयोजन के लिए परस्पर विदेश माना जाना चाहिए।"

4.23 दूसरी ओर, ऐसी स्थितियां भी हो सकती हैं जिनमें अधिवास तात्विक नहीं है। इस सम्बन्ध में **रतनसी मोरारजी** बनाम मद्रास के **एडमिनिस्ट्रेटर जनरल**[6] में, न्या० वेंकट सुब्बाराव के निर्णय के प्रति निर्देश

ऐसे मामले जिनमें अधिवास तात्विक नहीं है।

1. भारतीय विवाह विषयक विधान के अधीन अधिकारिता के बारे में आगे अध्याय 5-6 देखिए।
2. **बसन्त बनाम दत्तोबा**, ए० आई० आर० 1956 मुम्बई 49।
3. **नटराजा बनाम सुब्बारायन**, ए० आई० आर० 1950 पी० सी० 34, 36 पैरा 11 (ए० वाई आर० (1939) मद्रास 693 अपील) (साक्ष्य अधिनियम की धारा 13)।
4. **लक्ष्मी नारायण बनाम फतह बहादुर**, (1902) आई० एल० आर० 25 इलाहाबाद 195।
5. **शंकर विष्णु बनाम मानकलाल हरिदास**, ए० आई० आर० 1940 मुम्बई 362।
6. रतनसी मोरारजी बनाम एडमिनिस्ट्रेटर जनरल आफ मद्रास (1930) एम० एल० जे० 478 (न्या० वेंकट सुब्बाराव)।

किया जा सकता है। एक यूरोपीय स्त्री[1] ने हिन्दू धर्म में सम्परिवर्तित होकर हिन्दू अर्जीदार से वदिक संस्कारों के अनुसार विवाह कर लिया और जब उसकी मृत्यु हुई तो उसका हिन्दू संस्कारों के अनुसार दाह संस्कार किया गया। उसने अननुप्रमाणित विल छोड़ी थी और इसलिए प्रोबेट कार्यवाहियों में यह प्रश्न उठा कि वसीयतकर्ती 'हिन्दू' थी या नहीं,—क्योंकि केवल उस दशा में ही अननुप्रमाणित विल विधिमान्य हो सकती थी। (1927 के पूर्व, किसी मुफस्सिल स्थान में निष्पादित किसी हिन्दू को विल, अननुप्रमाणित होते हुए भी विधिमान्य थी)। न्यायालय ने इस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि ऐसा यूरोपीय, जो हिन्दू हो जाता है, हिन्दू विधि के अधीन आ जाता है और ऐसे मामले में कसौटी अधिवास की नहीं किन्तु धर्म को होती है।

रतनाशा बनाम **जामनजी**[2] में, वादी ने किसी पारसी की द्वितीय पत्नी से एक दान-विलेख के आधार पर भूमि पर दावा किया था, जिसकी मृत्यु बड़ौदा में अधिवासावस्था में हो गई थी। पारसी का प्रथम विवाह बड़ौदा में अधिवसित पारसियों के बीच प्रचलित विधिपूर्ण रूढ़ि के अनुसार 'फरगत' या 'परस्पर निर्मुक्ति' द्वारा विघटित किया गया था। किन्तु ऐसे विवाह-विच्छेद को ब्रिटिश भारत में पारसियों की स्वीय विधि द्वारा मान्यता नहीं दी गई थी। न्यायालय ने यह निर्धारित किया कि भारत में भूमि संबंधी उत्तराधिकार के प्रयोजनों के लिए विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता की जांच भारतीय विधि द्वारा होनी चाहिए। निस्संदेह यह विनिश्चय विवाह-विच्छेद को मान्यता से प्रत्यक्षतः संबंधित नहीं है। इसमें भारतीय विधि इसलिए लागू की गई थी, क्योंकि विवाद्य भूमि भारत में स्थित थी लागू किया गया[3] सिद्धान्त यह था कि केवल 'उस देश की विधि जहां सम्पत्ति स्थित हो' अनन्य रूप से स्थावर सम्पत्ति की अवधि, हक और उद्भव को शासित करती है।

एक राज्य में अधिवास।

4.24 बहुचर्चित मामला मुम्बई का **कमला बाई** बनाम **देवराम**[4] का था। दि मुम्बई डाइवोर्स ऐक्ट, 1947 (1947 का मुम्बई ऐक्ट 22) के कतिपय आधारों पर हिन्दुओं के बीच विवाह-विच्छेद को अनुज्ञा दी थी, किन्तु मध्य प्रदेश राज्य में वैसा कोई अधिनियम नहीं था। मध्य प्रदेश निवासी एक पति ने अपनी पत्नी का अधित्यजन किया, जो इसके पश्चात् अपने पिता के साथ मुम्बई में रहने लगी और उसने मुम्बई ऐक्ट के अधीन विवाह-विच्छेद के लिए वाद चलाया। उसके मामले में यह ऐक्ट लागू नहीं था, क्योंकि उसका पति और इसलिए वह स्वयं मध्य प्रदेश में 'अधिवसित' थे। यहां हमारा सम्बन्ध इस जटिल समस्या से नहीं है कि राज्य में उस रूप में अधिवास हो सकता है या नहीं। किन्तु यह मामला यह दर्शित करता है कि अधिवास की धारणा तात्विक है।

इंग्लैंड की विधि की सुसंगतता।

4.25 विवाह-विच्छेद के क्षेत्र में और कुटुम्ब विधि के अन्य क्षेत्रों में चुने हुए भारतीय न्यायिक विनिश्चयों का उपर्युक्त सारांश यह दर्शित करता है कि जहां तक विधि वैषम्य का सम्बन्ध है, इन क्षेत्रों का इंग्लण्ड के ही नियमों का साधारणतया भारत में अनुसरण किया गया है। अतः इस विषय पर इंग्लैण्ड के कामन ला की परीक्षा करना तात्विक हो जाता है और इस धारणा पर आगे बढ़ना अनुज्ञेय है कि साधारणतया, न कि आवश्यक रूप से प्रत्येक ब्यौरे के रूप में इंग्लैण्ड का कामन ला इस विषय पर भारत में अधिनियमित विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्धों के अभाव में, भारतीय न्यायालयों द्वारा अनुसरित किया जायगा।

1. मामलों पर विचार-विमर्श के लिए टी० एस० रामाराव की पुस्तक (1955) 4 इण्ड०ईयर बुक आफ इन्टरनेशनल एफेयर्स 219, 232 देखिए।
2. **रतनाशा** बनाम **दासनजी**, ए० आई० आर० 1938 मुम्बई 238, 240, 241 (न्यायाधीश एन० जे० वाडिया)।
3. **फेन्टन** बनाम **लिंगस्टन**, (1859) 115 आर० आर० 1062।
4. **कमलाबाई** बनाम **देवराम**, ए० आई० आर० 1955 मुम्बई 300।

अध्याय 5

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम से भिन्न अधिनियमितियों के अधीन अधिकारिता के बारे में भारतीय विधि

I. प्रारम्भिक

5.1 अब हम संक्षेप में, विवाह विघटित करने की अधिकारिता के बारे में उन उपबन्धों के प्रति निर्देश करेंगे जो कि भारत में विवाह विषयक अधिकारिता से संबंधित कुछ अधिनियमितियों[1] में अन्तर्विष्ट हैं। प्रारम्भिक।

II. पारसी विवाह अधिनियम

5.2 इन अधिनियमितियों में से, कन्वर्टस मेरिज डिजोलूशन ऐक्ट, 1866 का अधिक व्यावहारिक महत्व नहीं है। भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 पर पूर्ण रूप से विचार-विमर्श किए जाने की आवश्यकता है और इसके बारे में हम बाद[2] में विचार करेंगे। पारसी विवाह अधिनियम।

पारसी विवाह अधिनियम, 1936, जो कि कालक्रम से, अधिनियमितियों में से पहला है, न्यायालयों की अधिकारिता के प्रश्न पर धारा 29 में, निम्नलिखित[3] उपबन्ध करता है :—

"29. (1) इस अधिनियम के अधीन संस्थित किए गए सभी वाद उन न्यायालयों में लाए जाएंगे, जिनकी अधिकारिता की सीमाओं के भीतर प्रतिवादी वाद संस्थित किए जाने के समय निवास करता है।

(2) जब प्रतिवादी ने भारत ऐसे समय पर छोड़ दिया होगा तो ऐसा वाद उस स्थान के न्यायालय में लाया जाएगा जहां वादी और प्रतिवादी ने एक साथ अंतिम रूप से निवास किया था।

(3) किसी भी दशा में, चाहे प्रतिवादी उस राज्यक्षेत्र में निवास करता है या नहीं, जहां तक इस अधिनियम का विस्तार है, ऐसा वाद उस स्थान के न्यायालय में लाया जा सकेगा, जहां वादी और प्रतिवादी ने एक साथ अंतिम रूप से निवास किया था, यदि वह न्यायालय, अपने कारण लेखबद्ध करने के पश्चात्, ऐसा करने की इजाजत दे दे।"

5.3 ऊपर उद्धृत[4] पारसी विवाह अधिनियम की धारा 29 की उपधारा (2) और (3) में ही विदेशी तत्व के बारे में उल्लेख है और उन उपधाराओं में भी यह स्पष्ट नहीं है कि वे उपधाराएं, प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के विषय के रूप में, भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता विनियमित करने के लिए आशयित हैं या नहीं। इस सम्बन्ध में विशेष विवाह अधिनियम का उपबन्ध अधिक विनिर्दिष्ट[5] है। धारा 29 के विषय क्षेत्र के बारे में अनिश्चितता।

III. विशेष विवाह अधिनियम

5.4 विशेष विवाह अधिनियम[5] के अधीन,— विशेष विवाह अधिनियम।

"31. (1) अध्याय 5 या अध्याय 6 के अधीन प्रत्येक अर्जी उस जिला न्यायालय में पेश की जाएगी जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर विवाह अनुष्ठापित हुआ हो अथवा पति और पत्नी एक साथ निवास करते हों या उन्होंने अंतिम बार एक साथ निवास किया हो।

(2) न्यायालय द्वारा उपधारा (1) के अधीन प्रयोक्तव्य अधिकारिता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि जिला न्यायालय विवाह की अकृतता के लिए या विवाह-विच्छेद के लिए पत्नी द्वारा दी गई अर्जी इस उपधारा के आधार पर ग्रहण कर सकेगा यदि वह उन राज्यक्षेत्रों में अधिवसित हो, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है और उक्त राज्यक्षेत्रों में निवास करती हो तथा विवाह की

1. अधिनियमितियों की सूची के लिए ऊपर पैरा 4.10 देखिए।
2. ऊपर अध्याय 6 देखिए।
3. पारसी विवाह अधिनियम, 1936 की धारा 29।
4. ऊपर पैरा 5.2।
5. विशेष विवाह अधिनियम, 1954 की धारा 31।

अक्रुतता या विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश करने के ठीक पहले तीन वर्ष की कालावधि तक वहां मामूली तौर पर निवास करती रही हो और पति उक्त राज्यक्षेत्रों में निवास न करता हो।"

धारा 31 का विस्तार क्षेत्र।

5.5 इस बात पर ध्यान दिया जाए कि विशेष विवाह अधिनियम की ऊपर[1] उद्धृत धारा 31 एक दृष्टि से विनिर्दिष्ट है, जहां तक कि उस धारा की उपधारा (2) विदेशी तत्व अंतर्वलित करने वाले मामले को ध्यान में रखते हुए प्रतीत होती है। यह आन्तरिक स्थल के पहलू पर नहीं, किन्तु प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रति निर्देश से अधिकारिता पर जोर देती है। यह बात उन राज्यक्षेत्रों में, जिस तक इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित पत्नी के प्रति निर्देश से और इस अपेक्षा से भी कि उसे "उक्त राज्यक्षेत्रों में" निवासी होना चाहिए स्पष्ट हो जाती हैं। इन शब्दों में ऐसी कोई अपेक्षा अन्तःस्थापित नहीं हो गई है कि पत्नी को जिले में या जिला न्यायालय की स्थानीय सीमाओं में निवासी होना चाहिए। बल्कि ये शब्द संपूर्ण राज्यक्षेत्रों पर ही ध्यान केन्द्रित करते हैं। इस अर्थ में ऐसा ज्ञात होता है कि उनके अनुध्यान में विदेशी तत्व रखने वाले मामले हैं।

नीलकान्तन का मामला।

5.6 इस अधिनियम के प्रति निर्देश से, प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रश्न पर नीलकान्तन वाले मामले[2] में विचार किया गया था। वह प्रश्न, जो अवधारण के लिए प्रस्तुत हुआ, निर्णय में इस प्रकार बनाया गया था—

"भारत[3] में अधिवसित और जिला न्यायाधीश जोधपुर की अधिकारिता के भीतर रह रहे पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के अधीन जोधपुर न्यायालय में किया जा सकता है या नहीं, यद्यपि यह स्वीकार किया गया है कि पक्षकारों के बीच विवाह उक्त न्यायालय की अधिकारिता के भीतर अनुष्ठापित नहीं किया गया था, और न पति और पत्नी, विवाह के समय या उसके पश्चात् विशेष विवाह अधिनियम की धारा 31 की अपेक्षानुसार उस न्यायालय की अधिकारिता के भीतर निवास करते थे ?"

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जोधपुर न्यायालय को, प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के सिद्धान्तों के अनुसार अधिकारिता थी, यद्यपि उस अधिनियम की धारा 31, तथ्यों के आधार पर, लागू नहीं होती थी। ऐसा करने में न्यायालय ने यह सूचित किया कि पति भारत में अधिवसित था।

वर्तमान प्रयोजन के लिए, इस मामले में निकाले गए इस आशय के निष्कर्ष की विधिमान्यता की परीक्षा करना आवश्यक नहीं है कि विशेष विवाह अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित विवाह उसके अधीन विघटित किया जा सकता है या नहीं। हमारे लिए प्राइवेट अंतर्राष्ट्रीय विधि के बारे में व्यक्त किए गए मतों पर कोई विचार प्रकट करना भी आवश्यक नहीं है। हम इस मामले के प्रति निर्देश तो निर्णय में पति के अधिवास पर दिए गए बल को दर्शित करने के लिए कर रहे हैं।

IV. हिन्दू विवाह अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 1(2) और धारा 19।

5.7 हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 में दो उपबन्ध हैं जिन पर कि ध्यान दिया जाना चाहिए[4]। अधिनियम की धारा 1(2) निम्नलिखित उपबन्ध करती है:—

"(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्र के बाहर हों।"

इसके अतिरिक्त हिन्दू विवाह अधिनियम में अधिकारिता से संबन्धित उपबन्ध के प्रति निर्देश कर दिया जाए, जो कि निम्नलिखित है :—

"19. इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष उपस्थापित की जाएगी जिसकी साधारण आरम्भिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर विवाह अनुष्ठापित हुआ हो अथवा पति और पत्नी एक साथ रहते हों या अंतिम बार एक साथ रहे हों।"

1. ऊपर पैरा 5.4।
2. **नीलकान्तन बनाम नीलकान्ता**, ए० आई० आर० 1959 राजस्थान 133।
3. अधोरेखांकन हमारी ओर से किया गया है।
4. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 1(2) और धारा 19।

हिन्दू विवाह अधिनियम पर निर्णयज विधि ।

5.8. हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 19 पर विनिश्चित मामले उस धारा की प्रयुक्ति को निर्दशित करते हैं। इस प्रकार, यह कथन किया[1] गया है कि धारा 19 को पढ़ने मात्र से यह दर्शित होता है कि वह पति को या पत्नी को तीन स्थानों पर कार्यवाही संस्थित करने का चुनाव करने की स्वतंत्रता देती है,—अर्थात् वह स्थान जहां विवाह अनुष्ठापित किया गया था या वह स्थान जहां पति और पत्नी दोनों अर्जी प्रस्तुत करने के समय निवास करते हैं या वह स्थान जहां दोनों एक साथ अंतिम बार रहे थे। अतः जहां विवाह दिल्ली में अनुष्ठापित किया गया था और पक्षकार थोड़े समय के लिए अंतिम बार चंडीगढ़ में रहे थे वहां चंडीगढ़ के न्यायालय को अधिकारिता होगी। "अंतिम बार एक साथ रहे हों" इस वाक्यांश का निर्वचन अति सिद्धान्तवादी दृष्टि से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उसका अर्थ उदार दृष्टि से लगाया जाना चाहिए। चंडीगढ़ न्यायालय को दिल्ली न्यायालय के अतिरिक्त अधिकारिता होगी। निसंदेह आकस्मिक निवास इस मामले में पर्याप्त नहीं होगा।

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा यह भी अभिनिर्धारित[2] किया गया है कि हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 19 और 21 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 3 और 20 को एक साथ पढ़ने पर न्यायालय का यह अभिनिर्धारित करना न्यायोचित होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्ध भी हिन्दू विवाह अधिनियम के अधीन आवेदनों को लागू हैं, और उस न्यायालय को, जिसकी अधिकारिता के भीतर प्रतिवादी निवास कर रहा है, इस संहिता की धारा 20 के आधार पर उन मामलों में अधिकारिता होगी जिनमें कि इस अधिनियम की धारा 19 में अधिकथित कसौटियों का तथ्यों के आधार पर समाधान नहीं होता है।

उपबन्ध असंदिग्ध है ।

5.9. किन्तु हिन्दू विवाह अधिनियम[3] की धारा 19 स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित नहीं करती है कि वह विदेशी तत्व अंतर्वलित करने वाले मामलों को लागू होने के लिए आशयित है या नहीं। दूसरे शब्दों में यह सन्देहातीत नहीं है कि क्या इस धारा में भारतीय न्यायालयों के बीच परस्पर अधिकारिता के बारे में उल्लेख है अथवा क्या वह अधिकारिता की बाबत विधि वैषम्य के नियम को निगमित करने के लिए आशयित है।

निसंदेह, भारत में अधिवसित ऐसे हिन्दुओं[4] को जो भारत से बाहर हैं इस अधिनियम के लागू होने के बारे में साधारण उपबन्ध[3] धारा 1(2) में है। यह तर्क दिया जा सकता है कि धारा 1(2) विवक्षित रूप से साधारणतया भारतीय न्यायालयों द्वारा अधिकारिता का प्रयोग किए जाने की बाबत अधिवास की कसौटी प्रस्तुत करती है। किन्तु यह मामला पूर्ण रूप से संदेह से परे नहीं है। हमारे वर्तमान प्रयोजन के लिए, इस विषय पर राय देना आवश्यक नहीं है।

---

1. सुषमा बनाम ए० के० दीवान, ए० आई० आर० 1973 पी० एण्ड एच० 256, 257, पैरा 6 (न्या० एम० आर० शर्मा)।
2. एम० गोमती बनाम एस० नटराजन, ए० आई० आर० 1973 मद्रास 247।
3. हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 1(2)।
4. ऊपर पैरा 5.7।

अध्याय 6

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन अधिकारिता

I. प्रारम्भिक

प्रारम्भिक ।

6.1 इस अध्याय में, हम संक्षेप में भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के उन उपबन्धों के बारे में, जो विवाह-विच्छेद के संबन्ध में न्यायालयों की अधिकारिता से संबन्धित हैं, विचार करेंगे। यह अधिनियम केवल ईसाइयों को लागू होता है, किन्तु इसके उपबन्ध भारत में अनुष्ठापित विवाहों तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु वे भारतीय न्यायालयों को, उस दशा में जब कि कतिपय शर्तें विद्यमान हों, भारत के बाहर अनुष्ठापित विवाह विघटित करने के लिए सशक्त करने के हेतु भी पर्याप्त व्यापक है ।

II. 1926 के पूर्व स्थिति

विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 2 ।

6.2 अधिकारिता के प्रयोग के लिए पूरी की जाने वाली शर्तों से संबन्धित, इस अधिनियम का मुख्य उपबन्ध धारा 2 में है। 1926 में इस धारा का संशोधन किए जाने के पूर्व, इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा निर्बन्धन नहीं था कि पक्षकारों को (ब्रिटिश) भारत में अधिवसित होना चाहिए ताकि न्यायालय विवाह-विच्छेद की मंजूरी दे सके। ब्रिटिश भारत में निवास पर्याप्त था। उसका संशोधन कर दिए जाने के पश्चात् इस धारा में ऐसी अपेक्षा अंतःस्थापित कर दी गई है । हम धारा 2 के बारे में विस्तार से बाद में विचार करेंगे[1] ।

विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 45 ।

6.3 सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20, जोकि वैयक्तिक कार्यवाहियों में स्थान के बारे में साधारण उपबन्ध है, प्रतिवादी की ओर से या तो निवास की कसौटी या वाद हेतुक या उसके भाग के न्यायालय की अधिकारिता के भीतर प्रोद्भूत होना प्रस्तुत करती है, ताकि न्यायालय वाद को ग्रहण करने में समर्थ हो सके । किन्तु भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 45, जोकि सिविल प्रक्रिया संहिता को लागू करती है, स्पष्ट रूप से उसे 'इसमें अंतर्विष्ट उपबन्धों के अध्यधीन' बनाती है। अतः हमें अधिकारिता के बारे में सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबन्धों पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।

इस प्रकार, विवाह विषयक वाद ग्रहण करने के लिए न्यायालय की अधिकारिता के बारे में के प्रश्नों का अवधारण करने में, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 20 के प्रति कोई निर्देश नहीं किया जा सकता, भले ही उस धारा का यह अर्थ लगाया जाए कि वह विदेशी तत्व वाली कार्यवाहियों के बारे में उपबन्ध करती है । ईसाइयों के बीच विवाह विषयक वाद ग्रहण करने की अधिकारिता का विनिश्चय, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 2 से लेकर 4 तक के प्रति निर्देश से किया जाना है । यह स्थिति बहुत पहले से स्वीकार कर ली गई प्रतीत होती है ।

1926 के संशोधन के पूर्व भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 में उपबन्ध ।

6.4 भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 2 (1926 के संशोधन के पूर्व), जहां तक कि वह तात्विक है, इस प्रकार थी ।

"2. इसमें इसके पश्चात् अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी भी न्यायालय को उन दशाओं के सिवाय प्राधिकृत नहीं करेगी, जिनमें कि अर्जीदार ईसाई धर्म मानता है और अर्जी प्रस्तुत करने के समय भारत में निवास करता है, कोई अनुतोष प्रदान करने के लिए······

या विवाह के विघटन की डिक्री, निम्नलिखित दशाओं में के सिवाय देने के लिए प्राधिकृत नहीं करेगी, अर्थात्:—

(क) जहां विवाह भारत में अनुष्ठापित किया गया हो, या

(ख) परिवादित जार-कर्म भारत में किया गया हो ।"

1. आगे पैरा 6.4 और 6.11 ।

6.5 इस धारा पर 1926 के पूर्व विनिश्चित किए गए कुछ मामलों में यह अधिकथित किया गया कि अधिनियम के अधीन विवाह[1] के विघटन के लिए वादों का विचारण करने के लिए न्यायालय को अधिकारिता प्रदान करने के लिए निवास पर्याप्त था। पूर्व मामले।

6.6 इस प्रकार 1926 के संशोधन[2] के पूर्व, भारत में न्यायालयों द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण यह था कि वे ऐसे पति और पत्नी का विवाह विघटित कर सकते हैं जो भारत में अधिवसित नहीं हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय न्यायालयों द्वारा ऐसे पक्षकारों के विवाह का विघटन, जो भारत में अधिवसित नहीं थे। जहां तक कि भारतीय कानूनी रूपरेखा का संबन्ध था, विधिमान्य था, किन्तु उसका उन पक्षकारों के अधिवास के देश में उनकी प्रास्थिति पर कोई प्रभाव नहीं था। अधिवास की कसौटी।

इससे खेदजनक परिस्थिति और "लोकापवाद" पैदा हुए जिनका वर्णन प्रिवी कौंसिल के लार्ड महोदयों द्वारा **ली मैसूरोये** बनाम **ली मैसूरोये**[3] में उनके निर्णय के अंतिम वाक्य में इस प्रकार किया गया है:

ऐसा लोकापवाद जो उस समय जन्म लेता है, जब किसी पुरुष और स्त्री को एक देश में पति और पत्नी तथा दूसरे देश में अपरिचित अभिनिर्धारित किया जाता है।

6.7 भारत में मंजूर किए गए ऐसे विवाह-विच्छेद की मान्यता देने का प्रश्न इंगलैंड में उठा था। प्रोबेट डिवीजन के अध्यक्ष सर हेनरी ड्युक ने **कोईज** बनाम **कोईज**[4] में यह विनिश्चय किया कि भारत में विवाह-विच्छेद विधि का प्रशासन करने वाले न्यायालयों को ऐसे विवाह के विघटन की डिक्री देने की कोई अधिकारिता नहीं थी, जिसमें पक्षकार भारत में अधिवसित नहीं थे। उन्होंने यह भी विनिश्चित किया कि इंडियन कौंसिलस ऐक्ट, 1861 में भारतीय विधानमंडल द्वारा ऐसी विधि का बनाया जाना प्राधिकृत नहीं किया गया था जो भारत के न्यायालयों को उन व्यक्तियों के जोकि उनकी अधिकारिता में अधिवसित नहीं थे विवाह के विघटन की डिक्री देने के लिए सशक्त करे। कोईज बनाम कोईज और उसकी आलोचना।

इस विनिश्चय पर भारत में[5-6] अनेक रिपोर्ट किए गए मामलों में चर्चा की गई थी। यह इंगित किया गया था कि **कोईज** बनाम **कोईज** में न्यायालय के लिए यह कहना पर्याप्त होता कि चूंकि ली मैसूरोये वाले मामले[3] के पश्चात् या कम से कम, **बेटर** बनाम **बेटर**[7] वाले मामले के पश्चात् विवाह का विघटन करने की डिक्री के लिए अधिकारिता, इंगलैंड की विधि के अनुसार, पक्षकारों के अधिवास पर निर्भर करती है और चूंकि **कोईज** बनाम **कोईज** में पक्षकार का अधिवास इंगलैंड का था, अतः इंगलैंड के न्यायालय भारत के ऐसे न्यायालय द्वारा सुनाई गई डिक्री को, इंगलैंड में विधिमान्य नहीं मानेंगे, जिस न्यायालय की अधिकारिता एक सिद्धान्त अर्थात् वाद के समय पक्षकारों के निवास के सिद्धान्त पर आधारित थी, और जिसको कि इंगलैंड की विधि के अनुसार अधिकारिता प्रदान करने वाला स्वीकार नहीं किया गया था।

वास्तव में, निर्णय के प्रारम्भिक भाग में अध्यक्ष ने यह कहा कि "अर्जीदार भारत में अर्जीदार प्रेरणा पर दी गई डिक्री की इंगलैंड में विधिमान्यता का किसी प्रकार अवधारण कराने के लिए यह वाद लाया था। अतः भारतीय डिक्री की राज्यक्षेत्रातीत विधिमान्यता ही प्राथमिक रूप से वाद में प्रश्नगत थी। यह आवश्यक नहीं था कि आगे इस बात की भी जांच की जाती कि इण्डियन कौंसिलस ऐक्ट, 1861 द्वारा प्रदत्त शक्ति का भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 का अधिनियमन करने में अतिक्रमण किया गया था या नहीं।

किन्तु **कोईज** बनाम **कोईज** में दिए गए विनिश्चय का यह प्रभाव पड़ा कि भारतीय न्यायालयों द्वारा उन पक्षकारों के बीच जो (ब्रिटिश) भारत में निवासी तो थे किन्तु वहां अधिवसित नहीं थे, मंजूर किए बहुत से विवाह विच्छेदों की विधिमान्यता आलोच्य बन गया। इस स्थिति को बाद में विधान द्वारा संभाला गया जिसके

---

1. (क) **गियोरदानो बनाम गियोरदानो**, (1912) आई० एल० आर० 40 कलकत्ता 215,
(ख) **वारविक बनाम वारविक**, 64 पी० आर० 1900।
2. 1926 का 25 संशोधन अधिनियम।
3. **ली मैसूरोये बनाम ली मैसूरोये**, (1895) ए० सी० 517 (पी० सी०)।
4. **कोईज बनाम कोईज** (1921) प्रोबेट 204।
5. **विलिकन्सन बनाम विलिकन्सन**, ए० आई० आर० 1923 मुम्बई, 321।
6. **लौ बनाम लौ**, ए० आई० आर० 1924 लाहौर, 513।
7. **बेटर बनाम बेटर**, (1906) प्रोबेट 209।

प्रति हम सम्यक् अनुक्रम[1] में निर्देश करेंगे? उस विधान ने निवास के स्थान पर अधिवास को प्रतिस्थापि करके अधिकारिता के आधार को बदल दिया। जहां तक अतीत का संबन्ध है, विधिमान्यकारी विधान अधिनियमित[2] किया गया था।

केईज बनाम केईज के पश्चात् उच्च न्यायालयों के लिए खुले मार्ग।

6.8 **केईज** बनाम **केईज**[3,4] में दिए गए विनिश्चय के पश्चात् भारत के उच्च न्यायालयों में तीन मा खुले हुए थे:--

(क) **केईज** बनाम **केईज** में दिए गए इस विनिश्चय को अपनाना कि भारतीय विधानमंडल को य शक्ति नहीं थी कि वह उन पक्षकारों को जो अधिवसित नहीं थे, विवाह के विघटन के लि डिक्रियां मंजूर करने की न्यायालयों को अधिकारिता प्रदान करता, या

(ख) यह अभिनिर्धारित करना कि भारतीय विधानमंडल को शक्ति थी किन्तु उसने इसका प्रयोग न किया था, या

(ग) यह अभिनिर्धारित करना कि भारतीय विधानमंडल को शक्ति थी और उसने उसका प्रयोग किय था।

कुछ समय तक, इस बाबत अनिश्चितता और संघर्ष रहा कि इन मार्गों में से कौनसा मार्ग अपना जाना चाहिए। इस स्थिति को भारतीय विधानमंडल द्वारा अधिनियम[5] की धारा 2 का संशोधन करके स्प किया गया।

III. 1926 के पश्चात् स्थिति

1926 और 1927 के संशोधन।

6.9 भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1969[6] की धारा 2 का 1926 के अधिनियम 25 द्वा और 1927 के अधिनियम 30 द्वारा संशोधन किया गया। 1926 के संशोधन अधिनियम का प्रभाव मो तौर पर यह हुआ कि उसने इस अधिनियम के अधीन उन व्यक्तियों के जो भारत में अधिवसित हैं, विवाह व विघटन करने की डिक्री मंजूर करने के सम्बन्ध में भारतीय न्यायालय की शक्ति सीमित कर दी।

अधिवास एकमात्र कसौटी।

6.10 अब, विवाहों का विघटन करने के विषय में (भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता, धारा 2 द्वारा स्पष्टतया ऐसे व्यक्तियों तक सीमित है जो अर्जी के प्रस्तु करने के समय भारत में अधिवसित हैं। अतः यदि पक्षकारों का अधिवास भारतीय नहीं है तो भारत न्यायालयों[7] द्वारा कोई विघटन नहीं किया जा सकता।

वर्तमान धारा 2।

6.11 विवाह-विच्छेद अधिनियम की वर्तमान धारा 2 इस प्रकार है:--

"2. इस अधिनियम का विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है।

इसमें इसके पश्चात् अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी न्यायालय को इस बात के लिए प्राधिकृत नह करेगी कि वह इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष उस दशा के सिवाय प्रदान करे जब कि अर्जीदा या प्रत्यर्थी क्रिश्चियन धर्म मानने वाला है,

या विवाह के विघटन को डिक्रियां उस दशा के सिवाय दे जब कि विवाह के पक्षकार उस सम जब अर्जी प्रस्तुत की जाती है भारत में अधिवसित हैं,

या विवाह को अकृतता की डिक्रियां उस दशा के सिवाय दे जबकि विवाह का अनुष्ठापन भार में किया गया है तथा अर्जी प्रस्तुत करते समय अर्जीदार भारत में निवासी हैं,

---

1. आगे पैरा 6.9।
2. आगे पैरा 6.12।
3. कईज बनाम केईज (1921) प्रोबेट 204।
4. ऊपर पैरा 6.7:
5. आगे पैरा 6.9।
6. ऊपर पैरा 6.4।
7. (क) **विल्सन** बनाम **विल्सन**, ए० आई० आर०, 1931 लाहौर, 245; (अकृतता),
   (ख) **पियाट** बनाम **पियाट**, ए० आई० आर० 1929 लाहौर 565,
   (ग) **हाल** बनाम **हाल**, ए० आई० आर० 1933, सिंध 70,
   (घ) **वालर** बनाम **वालर**, आई० एल० आर० 10 लाहौर, 64; ए० आई० आर० 1928 लाहौर 557,
   (ङ) **ग्रान्ट** बनाम **ग्रान्ट**, ए० आई० आर० 1937 पटना 82,

या विवाह के विघटन या विवाह कि अकृतता की डिक्री से भिन्न इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष उस दशा के सिवाय दे जबकि अर्जी प्रस्तुत करते समय अर्जीदार भारत में निवास करता है।"

6.12 यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट के उपर्युक्त चर्चा से सुसंगत कतिपय कानूनों पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। अतीत में मंजूर किए गए विवाह-विच्छेदों का 1921 में पार्लियामेंट[1] के ऐक्ट द्वारा विधि-मान्यकरण किया गया था। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (एडाप्टेशन ऑफ ऐक्ट्स ऑफ पार्लियामेंट) आर्डर, 1937 द्वारा यथासंशोधित इंडियन एण्ड कालोनियल डाइवोर्स जुरिसडिक्शन ऐक्ट, 1926[2] और इंडियन एण्ड कालोनियल डाइवोर्स जुरिसडिक्शन ऐक्ट, 1940[3] के अधीन, ब्रिटिश भारत के उच्च न्यायालय को विवाह के विघटन की डिक्री देने की और कतिपय ऐसे अन्य मामलों में जो 1869 के भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की संशोधित धारा 2 के अन्तर्गत नहीं आते, अन्य आनुषंगिक अनुतोष देने की अधिकारिता दी गई थी। उच्च न्यायालय द्वारा लागू की जाने वाली विधि इंगलैंड की विधि थी। 1926 से 1947 तक यूनाइटेड किंगडम के अधिनियम।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम[4], 1947 की धारा 17 में यह उपबन्ध किया गया था कि भारत की नव सृष्ट डोमिनियन किसी भी न्यायालय को विवाह के विघटन के लिए (सिवाय लंबित कार्यवाहियों के) डिक्री किसी कार्यवाही में या उसके संबन्ध में, इंडियन एण्ड कालोनियल डाइवोर्स जुरिसडिक्शन ऐक्ट्स, 1926 और 1940 के अधीन अधिकारिता नहीं होनी चाहिए। किन्तु भारत के सभी न्यायालयों को या तो ब्रिटिश पार्लियामेंट के अधिनियम द्वारा या भारतीय अधिनियम द्वारा उक्त अधिनियमों के अधीन वही अधिकारिता होनी चाहिए जो उनके पास होती यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता।

अत: यूनाइटेड किंगडम के कानूनों का अब कोई व्यवहारिक महत्व नहीं रहा है। किन्तु वे यहां इस प्रतिपादन को निर्देशित करने के लिए निर्दिष्ट किए गए हैं कि विशेष कानूनी उपबन्धों के न होने पर, अधिवास को भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन अधिकारिता का प्रयोग किए जाने के लिए एकमात्र कसौटी के रूप में स्वीकार कर लिया गया है।

IV. विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन "अधिवास" का अभिप्राय

6.13 इस प्रकार, विवाह का विघटन करने के लिए भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन अधिवास अधिकारिता का एकमात्र शीर्ष है। यह अभिनिर्धारित[5] किया गया है कि इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उसी अधिवास की बाबत विनिश्चय किया जाना चाहिए जो कि विघटन के लिए अर्जी की तारीख को है। अर्जी की तारीख को अधिवास।

6.14 अकृतता की बाबत अधिनियम के अधीन विस्तृत अधिकारिता है। **विल्सन** बनाम **विल्सन**[6] वाले मामले में, अधिकारिता का प्रयोग अकृतता के लिए अर्जी की बाबत किया गया था, यद्यपि अर्जीदार भारत में अधिवसित नहीं था, क्योंकि विवाह भारत में अनुष्ठापित किया गया था और अर्जीदार अर्जी देने के समय भारत में निवासी था। यह विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा के द्वारा अनुज्ञात है। अकृतता अधिकारिता।

दूसरी ओर **पियाट** बनाम **पियाट**[7] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि 1926 के संशोधन के पश्चात्, भारतीय न्यायालयों को भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन उन व्यक्तियों का विवाह विघटित करने की अधिकारिता नहीं थी जो भारत में अधिवसित नहीं हैं:

6.15 1926 के ऐक्ट--दि इंडिया एण्ड कालोनियल डाइवोर्स जुरिसडिक्शन ऐक्ट--16 और 17 जिओ० 5 चा० 14[8], की बाबत कतिपय समस्याएं उठी थीं, उदाहरणार्थ यह प्रश्न उठा था कि कौन से उच्च न्यायालय उसके अधीन सक्षम हैं। किन्तु हमारा उन समस्याओं से सम्बन्ध नहीं है। 1926 का इंगलैंड का कानून।

1. 1921 का ऐक्ट।
2. इण्डियन एण्ड कालोनियल डाइवोर्स जुरिसडिक्शन ऐक्ट, 1926 (3 खण्ड 4 जिओ 6, सी० 35)।
3. इण्डियन एण्ड कालोनियल डाइवोर्स जुरिसडिशन ऐक्ट, 1926 (16 एण्ड 17 जिओ 5 सी० 40)।
4. इण्डियन इण्डिपेंडेंस ऐक्ट, 1947 (10 और 11 जिओ० 6, सी० 30)।
5. **अब्त उल्लाह** बनाम **अब्त उल्लाह**, ए० आई० आर० 1953 कलकत्ता 530 (एस० सी०)।
6. **विल्सन** बनाम **विल्सन**, ए० आई० आर० 1931 लाहौर 245।
7. **पियाट** बनाम **पियाट**, ए० आई० आर० 1929 लाहौर 565 (1)।
8. **वालर** बनाम **वालर** ए० आई० आर० 1928 लाहौर, 557।

सिंध वाले एक मामले[1] में, 1926 का इंडियन एण्ड काननियल डाइवोर्स जुरिसडिक्शन ऐक्ट के प्रभाव का अवलोकन किया गया था और यह बताया गया था कि जबकि लैटर्स पेटेंट द्वारा स्थापित उच्च न्यायालय तद्धीन कतिपय अतिरिक्त अधिकारिता का प्रयोग कर सकते थे, अन्य न्यायालयों को अधिकारिता अनन्यत अधिवास पर आधारित थी, और यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया था कि यह तथ्य कि विवाह भारत में अनुष्ठापित किया गया था या जार-कर्म भारत में किया गया था, महत्वहीन था।

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन पत्नी के अधिवास के बारे में भारतीय विधि। स्त्रियों का अधिवास।

6.16 विवाह के विघटन के लिये कार्यवाहियों में पक्षकारों के अधिवास का अवधारण करने में केवल पति के अधिवास पर ही विचार किया जाना होता है, क्योंकि जहां तक पत्नी का प्रश्न है वह विवाह[2] के पश्चात् अपने पति का अधिवास ग्रहण कर लेती है ।

6.16क यदि पति ने अपनी पत्नी का अभित्यजन कर दिया है तो पत्नी का मूल अधिवास स्वतः पुनः प्रवर्तित नहीं हो जाता है और उसके द्वारा अपने विवाह पर अर्जित अधिवास समाप्त नहीं हो जाता है यह भारत में बहुत से विनिश्चयों[3] द्वारा सुस्थापित है।

1948 का ऐक्ट।

6.17. हमने विवाह-विच्छेद अधिनियम[4] को अनुपूरित करने वाले यूनाइटेड किंगडम के ऐक्टों के प्रति निर्देश किया है । विवाह विच्छेद अधिनियम के अधीन भारतीय न्यायालय से विवाह-विच्छेद की डिक्री चाहने वाले पक्षकार द्वारा भारतीय अधिवास की अपेक्षा के प्रति जो एक मात्र अन्य कानूनी अपवाद है उसका उपबन्ध विवाह विषयक वाद (युद्ध कालीन विवाह) अधिनियम[5] में किया गया है, जोकि 1944 के वैसे ही इंगलैंड के आधार पर अंगीकार किया गया है । यह अधिनियम भारत से बाहर अधिवसित व्यक्ति से विवाहित पत्नी को, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम[6] में उल्लिखित आधारों पर विवाह विघटित या अकृत कराने में समर्थ बनाता है; परन्तु यह तब जब कि (क) विवाह युद्ध की कालावधि (द्वितीय विश्व युद्ध) के दौरान अनुष्ठापित किया गया हो, (ख) पत्नी विवाह के तुरन्त पूर्व भारत में अधिवसित रही हो और (ग) पक्षकार विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् से पति के अधिवास के देश में एक साथ रहे हों । इसके अतिरिक्त पक्षकारों को ईसाई अवश्य ही होना चाहिये ।

यदि ये शर्त (और कतिपय अन्य छोटी-मोटी अपेक्षायें जो हमारे प्रयोजन के लिये महत्वपूर्ण नहीं हैं) पूरी कर दी जाती हैं जो उच्च न्यायालय को, अकृतता या विवाह-विच्छेद के लिये कार्यवाहियों में और उनके संबंध में वैसी ही अधिकारिता होगी मानो दोनों पक्षकार सभी तात्विक समयों पर भारत में अधिवसित थे। कार्यवाहियां भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम द्वारा शासित होंगी । इस अधिनियम में यह भी उपबन्ध किया गया है कि 1944 के यूनाइटेड किंगडम के ऐक्ट के अधीन—जो कि तत्स्थानी यूनाइटेड किंगडम ऐक्ट है—यूनाइटेड किंगडम में दी गई किसी डिक्री या आदेश की विधिमान्यता को, इस अधिनियम के आधार पर, भारत में सभी न्यायालयों में मान्यता दी जायगी ।

---

1. **हाल** बनाम **हाल**, ए० आई० आर० 1933 सिंध 72, 73 ।
2. **अतउल्लाह** बनाम **अतउल्लाह**, ए० आई० आर० 1953 कलकत्ता 530, 534, 535 ।
3. (क) **प्रेम प्रताप** बनाम जगत पोलेग ए० आई० आर० 1944 इलाहाबाद 97.100 ;
   (ख) **रूके** बनाम **रूके**, ए० आई० आर० 1934 मुम्बई 230;
   (ग) **लिन्टन** बनाम **गुदेरियन**, ए० आई० आर० 1929 कलकत्ता 599, 601;
   (घ) **सुभाथी अम्मल** बनाम **डी० पन्त**, ए० आई० आर० 1936 मद्रास 324 पैरा 9, 10 (सन्दर्भ के प्रसंग में न्या० मोकेट) ;
   (ङ) **नीलकान्तन** बनाम **नीलकान्तन**, ए० आई० आर० 1959 राजस्थान 133, 134 ।
4. ऊपर पैरा 6.12 ।
5. विवाह विषयक वाद (युद्ध कालीन विवाह) अधिनियम, 1948 (1948 का 40) ।
6. इण्डियन डाइवोर्स ऐक्ट, 1869 ।

अध्याय 7

मान्यता के बारे में इंगलैंड का कामन लॉ

7.1 इस अध्याय की विषय-वस्तु विदेशी विवाह-विच्छेदों और न्यायिक पृथक्करण की डिक्रियों को मान्यता के विषय में इंगलैंड का कामन लॉ है । हमने वर्तमान चर्चा[1] से उसकी सुसंगति के बारे में पहले ही संकेत कर दिया है । अध्याय का विषयक्षेत्र।

7.2 इस विषय पर कालक्रमानुसार चर्चा करना और समय के क्रम से विभिन्न विकासों पर चर्चा करना सुविधाजनक होगा । कालक्रमानुसार विकास-अधिवास।

इंगलैंड के कामन लॉ का सनातन सिद्धांत यह था कि साधारणतः कोई विदेशी न्यायालय विवाह-विच्छेद को मंजूरी देने के लिये केवल तभी सक्षम है जब पक्षकार विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों के प्रारम्भ पर उसकी अधिकारिता के भीतर अधिवसित हों । ऐसे विवाह-विच्छेद को, न कि अन्य किसी को, इंगलैंड के न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जायेगी । इस प्रयोजन के लिये "अधिवास" को अंग्रेजी अर्थ में लिया जाता है । मात्र अस्थायी निवास "अधिवास"[2] के क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं आता है ।

7.3 किन्तु यह स्थिति रायों में पर्याप्त उच्चावचन के बिना स्थिर नहीं हो सकी। **आर बनाम लोली**[3] में यह राय प्रकट की गई थी कि विवाह के विघटन के बारे में उस देश की विधि का जहां संविदा की गई हो, ध्यान रखा जाना चाहिये था, और "इंगलिश विवाह" केवल इंगलैंड में विघटित किया जा सकता था । किन्तु इस दृष्टिकोण का लार्ड वैस्टवरी द्वारा **शा० बनाम गोल्ड**[4] में खंडन किया गया था । लोली का मामला और शा बनाम गोल्ड तक पश्चात्वर्ती विनिश्चय ।

7.4 **निब्रोएट** बनाम **निब्रोएट**[5] में अपील न्यायालय के बहुमत के विनिश्चय ने इंगलैंड की अन्तर्देशीय अधिकारिता के प्रयोग के लिये वास्तविक निवास के सिद्धांत को अधिकथित किया गया था, किन्तु इस विनिश्चय का आधिपत्य केवल अस्थायी रहा । उस मामले में ऐसा मालूम होता है कि बहुमत ने इस तथ्य पर जोर दिया कि पति और पत्नी वास्तव में इंगलैंड में निवास कर रहे थे और वे वहां मात्र आकस्मिक यात्रियों के रूप में उपस्थित नहीं थे । इस आधार पर इंगलैंड न्यायालय (बहुमत की राय के अनुसार) उनका विवाह विघटित करने में सक्षम थे, भले ही पक्षकार वास्तव में इंगलैंड में अधिवसित नहीं थे। निसंदेह निबोएट में विवाद्यक विवाह विदेशी निर्णय की मान्यता का नहीं था किन्तु इंगलैंड के न्यायालयों की अधिकारिता का था । किन्तु मान्यता की बाबत उसका अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत कुछ हो सकता था, यदि उसका आधिपत्य रहता । **निबोएट बनाम निबोएट** (वास्तविक निवास की कसौटी) ।

7.5 किन्तु निबोएट[6] अधिक दिनों आधिपत्य नहीं रख सका और **ली मैसूरोये** बनाम **ली मैसूरोये**[7] में अधिवास को अधिकारिता के प्रयोग के लिये मात्र कसौटी के रूप में मान लिया गया । यह मामला इंगलैंड के न्यायालयों की अधिकारिता से संबंधित नहीं था किन्तु वह उस पर अप्रत्यक्ष प्रभाव रखता था । चूंकि यह प्रिवी कौंसिल का विनिश्चय था, अतः उसने औपचारिक रूप से **निब्रोएट** बनाम **निब्रोएट** के विनिश्चय को उलट नहीं दिया किन्तु उसमें अधिकथित नियम को निसंदेह इंगलैंड के न्यायालयों द्वारा भी अधिकारिता के प्रयोजन के लिये विधिमान्य नियम के रूप में मान लिया गया । **ली मैसूरोये बनाम ली मैसूरोये।**

इस प्रकार, इंडिका वाले मामले में[8], लार्ड विलवेफोर्स ने यह मत व्यक्त किया कि "ली मैसूरोये वाला मामला मान्यता से बिल्कुल भी संबंधित नहीं था किन्तु यह ठीक नहीं होगा कि इस बात को यह कह कर छोड़

1. ऊपर अध्याय 6 ।
2. **शा बनाम गोल्ड**, (1865) एल० आर० 3 एच० एल० 55 ।
3. **आर० बनाम लोली** (1812) रस एण्ड रे 237 ।
4. **शा बनाम गोल्ड**, (1868) ला रिपोर्टस 3 हाउस आफ लार्ड्स 55 ।
5. **निबोएट बनाम निबोएट**, (1892) 4 पी० डी० ।
6. **निबोएट बनाम निब्रोएट** ऊपर पैरा 7.4. ।
7. **ली मैसूरोये बनाम ली मैसूरोये** (1895) ए० सी० 517 (पी०सी०) ।
8. **इण्डिका बनाम इण्डिका**, (1967) आल ई० आर० 689-720. ।

दिया जाये कि यह इतरोक्ति था, क्योंकि मान्यता की बाबत न केवल वाद वाले मामलों में इसे विनिश्चय का आधार बनाया गया, किन्तु उसकी तर्कणा ही इस कल्पना पर आधारित है कि सामान्य विधि संरचना में इंगलैंड के न्यायालयों को अन्तर्देशीय अधिकारिता और उनके द्वारा विदेशी डिक्रियों को मान्यता दोनों ही अन्तर्विष्ट हो सकते हैं ।

डिक्री की विधिमान्यता को प्रभावित न करने वाले तत्व ।

7.6 ली मैसूरोये[1] में विनिश्चय के पश्चात् तक विदेशी विवाह-विच्छेद की मान्यता के लिये मुख्य कसौटी अधिवास की ही थी । यदि विदेशी न्यायालय को अधिवास की कसौटी के आधार पर सक्षमता है तो उस न्यायालय द्वारा पारित डिक्री––

(i) विवाह[2] के समय पक्षकारों के अधिवास या राष्ट्रिकता द्वारा,

(ii) उस स्थान की विधि द्वारा जहां विवाह अनुष्ठापित किया गया था, या

(iii) इस तथ्य द्वारा कि विवाह-विच्छेद के आधार का गठन करने वाला कार्य उस न्यायालय की अधिकारिता के बाहर किया गया था,

अप्रभावित रहती है ।

उपर्युक्त प्रतिपादना (i) के प्रति निर्देश से यह कहा जा सकता है कि हार्वे बनाम फार्नी[3] में उदाहरणार्थ इंगलैंड के न्यायालय ने उस सक्षम विदेशी अधिकरण के विनिश्चय को मान्यता दी थी जिसने उस दम्पति के विवाह का विघटन किया था, जो कार्यवाहियों के संस्थित किये जाने के समय उसकी अधिकारिता के भीतर अधिवसित थे । न्यायालय ने इस बात की उपेक्षा की कि स्त्री विवाह के समय इंगलैंड में अधिवसित थी ।

अधिवास के न्यायालय द्वारा मान्य डिक्री ।

7.7 अधिवास की कसौटी को सविस्तार प्रतिपादित किया गया था और उसमें सम्यक् के अनुक्रम में कतिपय सुधार किये गये थे । इस संबंध में एक सुधार उल्लेखनीय है । यदि पति राज्य 'क' में अधिवसित है और वह 'ख' राज्य के न्यायालयों में विवाह-विच्छेद प्राप्त करता है, इंगलैंड के न्यायालय इस डिक्री की विधिमान्यता स्वीकार[4] करेंगे यदि 'क' न्यायालय द्वारा उसे मान्यता दी जाये ।

दूसरे, यह अभिनिर्धारित[5] किया गया था कि इस कसौटी के लिये यह विसंगत है कि उस विशिष्ट आधार को जिस पर विदेशी न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद मंजूर किया गया था, इंगलैंड की राष्ट्रीय विधि द्वारा मान्यता दी जायेगी या नहीं ।

यह भी अधिकथित किया गया था कि डिक्री को इंगलैंड के न्यायालय द्वारा मान्यता दी जायेगी, यदि सक्षम अधिकारिता वाला विदेशी न्यायालय डिक्री मंजूर करने के लिये स्थानीय या किसी अन्य विधि को लागू करता है, भले ही यह विधि विवाह-विच्छेद के आधार के बारे में इंगलैंड की विधि से भिन्न हो, किन्तु यह नियम लोकनीति के सिद्धांत के अध्यधीन है ।

अधिकारिता के आधार का महत्वहीन होना ।

7.8 न्यायिक विनिश्चयों से भी 1958 में यह स्पष्ट[6] कर दिया गया था कि वहां मान्यता प्रदान की जायेगी, जहां वे तथ्य विद्यमान हैं जिन्होंने इंगलैंड न्यायालयों को अधिकारिता दी होती, भले ही विदेशी न्यायालय ने ऐसे आधार पर अधिकारिता ग्रहण की थी और डिक्री दी थी, जिसे कि इंगलैंड के न्यायालयों में विवाह-विच्छेद में आधार के रूप में मान्यता नहीं दी गई है । इस प्रकार इस नियम को लागू करते समय, इंगलैंड के न्यायालय का उस आधार से सम्बन्ध नहीं होता है जिस पर विदेशी डिक्री मंजूर की गई थी । किन्तु इस संदर्भ में उनका संबंध उन तथ्यों से है जिनके संदर्भ में उसे मंजूर किया गया था ।

इस विषय पर, इंगलैंड में विधि उस कानून[7] में मौजूद है, जिसके बारे में हम बाद में चर्चा करेंगे ।

---

1. ऊपर पैरा 7.4 और 7.5. ।
2. हार्वे बनाम फार्नी, (1882) 8 ए० पीपी सी०ए० एस० 43 ।
3. हार्वे बनाम फार्नी (1882) 7 ए० पीपी सी०ए० एस० 43 ।
4. आर्मीटेज बनाम ए० जी० (1906) प्रोबेट 135, लार्ड रीड द्वारा अनुमोदित । इण्डिका बनाम इण्डिका, (1967) 2 आल ई० आर० 689 (1969) आई० ए० सी० 33 (एच० एल०) में लार्ड पीयर्स और० लार्ड विलबरफोर्स ।
5. बेटर बनाम बेटर, (1905) प्रोबेट 209 ।
6. राबिनसन थाड बनाम राबिनसन थाड, (1958) प्रोबेट 1 ।
7. 1971 का इंगलैंड का ऐक्ट ।

संक्षेप में परिणाम ।

7.9 इन न्यायिक विनिश्चयों का परिणाम यह हुआ कि दोनों पक्षकारों का अधिवास (क) इंगलैंड के राष्ट्रीय न्यायालयों द्वारा विवाहविच्छेद में अधिकारिता का प्रयोग किये जाने के लिये, और (ख) विदेशी न्यायालयों द्वारा मंजूर किये गये विवाह-विच्छेद की मान्यता के लिये, मुख्य कसौटी बन गया।

अधिवास के साधारण विषय में, सम्यक् अनुक्रम में परिवर्तन किये गये थे । ऐसा प्रथम परिवर्द्धन[1] 1953 में किया गया था, जब यह सिद्धांत अधिकथित किया गया था कि यदि कोई पत्नी उस विदेश में विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त करती है, जिसमें वह अधिवसित नहीं है, और तथ्य ऐसे हैं कि इंगलैंड का न्यायालय भी विवाह-विच्छेद के लिये उसकी अर्जी (उस आधार पर जिस पर विदेशी न्यायालय ने अधिकारिता का प्रयोग किया था) ग्रहण करने के लिये अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है, तो विवाह-विच्छेद को इंगलैंड में मान्यता दी जायेगी । इस नियम का जन्म इस तथ्य से हुआ था कि कतिपय परिस्थितियों में, इंगलैंड का न्यायालय स्वयं, विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्ध के आधार पर, विवाह-विच्छेद के लिये पत्नी की अर्जी सुनने के लिये अधिकारिता का प्रयोग कर सकता था, भले ही पक्षकार इंगलैंड में अधिवसित नहीं हों।

अपील न्यायालय ने पारस्परिक सिद्धांतों से, ट्रेवर्स बनाम होली[2] के मामले में एक और विच्छेद किया । उस मामले में प्रश्न यह था कि इंगलैंड का न्यायालय, इंग्लिश मैट्रीमोनियल काजेज ऐक्ट, 1950 की धारा 18 (कतिपय मामलों में पत्नी को विवाह-विच्छेद प्रदान करने की अधिकारिता) के समान विधान के अधीन, न्यू साऊथ वेल्स के सुप्रीम कोर्ट द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री को विधिमान्य मानेगा या नहीं। अपील न्यायालय ने इंगलैंड की और विदेशी विधि में सामान्य, निवास संबंधी अधिकारिता पर आधारित विदेशी डिक्री की मान्यता की मंजूरी दे दी न्या० सोमरवेल ने कहा कि "सिद्धांततः मुझे यह स्पष्ट मालूम होता है कि इस मामले में हमारे न्यायालयों को उस अधिकारिता को मान्यता देनी चाहिये, जिसका वे स्वयं दावा करते हैं ।" न्या० हडसन ने आगे यह कहा : "ली मैसूरोये वाले मामले के पश्चात् से अधिकथित और अपनाये गये सिद्धांत का निर्वचन, उस विधान को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिये, जिसने इस देश के न्यायालयों की शक्ति का उन व्यक्तियों के मामलों तक विस्तार किया है जो यहां अधिवसित नहीं हैं।"

वास्तविक और सारवान् सम्बन्ध ।

7.10 1969 में, इंडिका[3] के मामले में हाउस आफ लार्ड्स ने एक और आधार जोड़ा, जिसके अधीन विवाह-विच्छेद की किसी भी ऐसी विदेशी डिक्री को मान्यता दी गई है, "जिसमें वास्तविक और सारवान्, संबंध अर्जीदार और उस देश या राज्यक्षेत्र के बीच, जिसने डिक्री प्रदान की थी दर्शित किया गया है । निःसंदेह, इस मामले के तथ्य अपेक्षाकृत जटिल थे, और इसके अतिरिक्त, चूंकि विभिन्न लॉ लार्डों द्वारा बहुत सारे निर्णय दिये गये थे, अतः हाउस[4] द्वारा अधिकथित प्रतिपादना के बारे में कोई विनिश्चय कथन करना आसान प्रतीत नहीं हुआ है। किन्तु साधारणतः उपर्युक्त कथन के बारे में यह विश्वास किया जाता है कि वह विनिश्चय के सार का, जहां तक वह मान्यता के प्रश्न से सुसंगत है, लगभग यथावत कथन है ।

कामन ला में की स्थिति के अनुसार मान्यता के आधारों की संक्षेपावृत्ति ।

7.11 हमने ऊपर जो इसके आधार पर कहा है, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विदेशी डिक्री की मान्यता के विषय पर (कानून के अतिरिक्त) इंगलैंड के कामन ला के नियमों का वह कथन करके संक्षेपावृत्ति की जा सकती है कि ऐसी मान्यता इंगलैंड के न्यायालयों द्वारा प्रदान की जायगी, यदि--

(क) पक्षकार[5] संबंधित विदेश में अधिवासित थे; या

(ख) डिक्री पत्नी द्वारा अभिप्राप्त की गई है और तथ्य ऐसे हैं कि इंगलैंड के न्यायालयों को विवाह-विच्छेद मंजूर करने की अधिकारिता[6] होगी; या

(ग) डिक्री ऐसी है कि यद्यपि वह अधिवास के न्यायालय द्वारा प्रदान नहीं की गई है, किन्तु उसे अधिवास[7] के न्यायालय द्वारा मान्यता दी जायगी, या

(घ) अर्जीदार और उस देश के बीच, जिसने डिक्री[8] प्रदान की है, वास्तविक और सारवान् संबंध प्रदर्शित किया गया है ।

---

1. ट्रेवर्स बनाम होली, (1953) प्रोबेट 246 ।
2. ट्रेवर्स बनाम होली (1953) प्रोबेट, 246, 251, 257 ।
3. इण्डिका बनाम इण्डिका (1969) ए० सी० 33 (एच० एल०) ।
4. सकलता के बारे में, लग बनाम गस्टिन (1976) 1 आल ई० आर० 113 देखिए ।
5. ऊपर पैरा 7.2 ।
6. ऊपर पैरा 7.3 ।
7. ऊपर पैरा 7.6 ।
8. ऊपर पैरा 7.10 ।

किन्तु अंतिम वर्णित आधार के बारे में इस बात की पुनरावृत्ति की जानी चाहिए कि हाऊस आफ लार्ड्स में **इंडिका** बनाम **इंडिका**[1] वाले मामले पर आधारित यह आधार विधि का मात्र वह कथन है जो कि संभवतः अधि-कथित किया गया था, किन्तु वह यह कोई बहुत निश्चित कथन नहीं है। बहरहाल इस विषय पर विधि अब हाल के 1971 के एक्ट में उपलभ्य है, जिसमें कि वह कानूनी उपबन्ध[2] है जो कि वस्तुतः मान्यता के आधारों के विस्तार का वर्जन करता है।

मान्यता पर निर्बन्धन।

7.12 उन आधारों के बारे में जिन पर कि मान्यता सामान्य विधि में प्रदान की जायगी, इतना ही है। किसी विदेशी डिक्री को मान्यता देने के लिए एक अधिभावी अपेक्षा यह है कि वह कपटपूर्वक[3] या ऐसी परि-स्थितियों में प्राप्त नहीं की गई थी। जोकि इंगलैंड की विधि के मौलिक सिद्धांतों के अनुसार नैसर्गिक न्याय से या (एक दृष्टिकोण के अनुसार) सारवान् न्याय तक से वंचित करने की कोटि में आती थी।

भारतीय विधि।

7.13 इंगलैंड की विधि का संक्षिप्त चर्चा मात्र बौद्धिक दृष्टि से रुचिकर नहीं है, क्योंकि जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं साधारणतः इसके विरुद्ध विनिर्दिष्ट कानूनी उपबन्धों के अभाव में, विधि वैषम्य के बारे में इंगलैंड के नियम, अर्थात् कानून द्वारा यथाउपान्तरित कामन ला में इस विषय पर विद्यमान नियम सहायक होंगे।

---

1. इण्डिका बनाम इण्डिका, ऊपर 7.10।
2. आगे अध्याय 8।
3. मिडिलटन बनाम मिडिलटन, (1967) प्रोबेट 62।

अध्याय 8

न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद

I. प्रारम्भिक

8.1 मान्यता के बारे में इंगलैंड की विधि की चर्चा करने में अभी तक हम विदेशी-न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों की मान्यता या अमान्यकरण तक, अर्थात्—विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण मंजूर करने के लिये विदेशी न्यायालय की सक्षमता तक, सीमित रहे हैं। हमने पक्षकारों की स्वीय धार्मिक विधि के अधीन मंजूर किये गये विवाह-विच्छेद की विदेशी न्यायिकेतर पद्धतियों को मान्यता दी जाने के अधिक दुष्कर प्रश्न के बारे में विचार नहीं किया है। अब हम इसके बारे में विचार करेंगे। न्यायिकेतर विदेशी विवाह-विच्छेदों की मान्यता।

8.2 "न्यायिकेतर" विवाह-बच्छेद से हमारा अभिप्राय ऐसे विवाह-विच्छेदों से है, जिनमें न्यायालय की कोई डिक्री नहीं होती। विस्तार क्षेत्र और किस्में।

न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों की बहुत सी[1] किस्में हैं। कोई ऐसा एकपक्षीय कार्य हो सकता है जैसे उदाहरण के लिये पति का एकपक्षीय कार्य, जिसे मुस्लिम विधि[2] में तलाक के रूप में या यहूदी विधि[3] में सहमतिजन्य कार्यचेट के रूप में जाना जाता है—या ऐसे ही[4] किसी अन्य रूप में हो सकता है।

कभी-कभी छोटा-मोटा न्यायिक बाह्याचार भी हो सकता है उदाहरणार्थ, **रस बनाम रस**[5] में विचारण के समय इजिप्ट की विधि के बारे में साक्ष्य मुस्लिम विधि के अधिवक्ता डा० जमाल नासिर द्वारा जिन्होंने इजिप्ट के मुस्लिम न्यायालयों में विधि व्यवसाय किया था, दिया गया था। उनके साक्ष्य के प्रभाव के बारे में न्यायाधीश द्वारा निर्णय के दौरान सुविधापूर्वक संक्षेप में यह निम्न कथन किया गया था :—

(क) इजिप्ट की विधि, मुस्लिम धार्मिक विधि को इजिप्ट में अधिवसित किसी मुसलमान की स्वीय विधि के रूप में मान्यता देती है और प्रभावी करती है।

(ख) मुस्लिम विधि के अधीन कोई पुरुष चार पत्नियां रख सकता है, दूसरे शब्दों में वहां विवाह संभाव्यता बहु पत्नीक होता है।

(ग) मुस्लिम विधि के अधीन कोई पुरुष अपनी पत्नी को साक्षियों की उपस्थिति में तीन बार 'तलाक' शब्द सुना कर अप्रतिसंहरणीय रूप से तलाक दे सकता है। इस अधिकार का पति द्वारा प्रयोग किये जाने के पूर्व किसी न्यायिक कार्यवाही या अन्वेषण की आवश्यकता नहीं होती। विवाह-विच्छेद कम से कम दो साक्षियों की उपस्थिति में पति द्वारा एकपक्षीय रूप से उसकी घोषणा कर देने मात्र से हो जाता है। पत्नी का उपस्थित होना आवश्यक नहीं होता और न उसे विवाह-विच्छेद के आशय की सूचना दी जाने की आवश्यकता होती है।

(घ) इजिप्ट की विधि इजिस्ट में अधिवसित किसी मुसलमान द्वारा दिये गये 'तलाक' विवाह-विच्छेद की मान्यता देती है और प्रभावी करती है। इजिप्ट की विधि द्वारा विवाह को विघटित रूप में मान्यता घोषणा की तारीख से दी जाती है और ऐसा किसी भी ऐसे स्थान पर किया जा सकता है जहां विवाह अनुष्ठापित किया गया था। यह विधि विघटन को अनेक प्रकार से प्रभावी करती है, उदाहरण के लिये तलाक वैयक्तिक प्रास्थिति के प्रश्नों से संबंध रखने वाले इजिप्ट के न्यायालय के किसी ऐसे प्राधिकृत अधिकारी के समक्ष जिसका कर्तव्य न्यायालय के अभिलेखों में

1. आगे पैरा 8.3 और 8.4 देखिए।
2. आगे पैरा 8.6।
3. आगे पैरा 8.5।
4. आगे पैरा 8.4 देखिए (बहुत सी किस्मों की गणना)।
5. **रस बनाम रस** (1962) 1 आल ई० आर०, 649, 651, (1964) प्रोबेट 315 में भी अपील न्यायालय द्वारा उद्धृत।

विवाह-विच्छेद अभिलिखित करना है, सुनाया जा सकता है और प्राय: हमेशा ही यह उसके साथ सुनाया जाता है । इसके पश्चात्, जैसा कि डा० नासिर ने पूर्व कथन किया था, इजिप्ट के न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद के तथ्य को मान्यता दे दी जाती है । तथा विघटित विवाह के पक्षकार विच्छिन्न विवाह पत्नी के भरण-पोषण और सहायता के विषय में इजिप्ट के समुचित न्यायालयों में जा सकते हैं ।

II. न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों के वर्ग

वर्ग ।

8.3 न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद मोटे तौर पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किये जा सकते हैं : वे विवाह-विच्छेद जो संपूर्ण रूप से पक्षकारों की इच्छा पर निर्भर होते हैं और वे विवाह-विच्छेद जो किसी प्राधिकारी के अनुमोदन की अपेक्षा रखते हैं । प्राधिकारी प्रशासनिक हो सकता है, धार्मिक हो सकता है, अर्ध-न्यायिक हो सकता है या न्यायिक हो सकता है । बहुधा प्रशासनिक या अन्य प्राधिकारी कोई स्वतन्त्र जांच नहीं करते, किन्तु पक्षकारों द्वारा की गई औपचारिकताओं पर, अभिलेख के रूप में, स्वीकृति देकर जांच पूरी कर देते हैं । पुन: न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों के प्रथम वर्ग पर आते हुए, अर्थात् शुद्ध रूप से पक्षकारों के कार्य द्वारा किये जाने वाले विवाह-विच्छेदों के बारे में यह कहा जा सकता है कि विवाह-विच्छेद एक पक्षकार के कार्य द्वारा प्रभावी किया जा सकता है या इसमें दोनों पक्षकारों की सहमति भी आवश्यक हो सकती है । कुछ हद तक, न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों की अनेकानेक किस्मों और बहुत से वर्गों के होने के कारण उनकी मान्यता की बाबत स्थिति की दुर्ज्ञेयता में, जो कि इंगलैंड,[1] में प्रवर्तमान है, वृद्धि हुई है।

8.4 1952 में लिखते हुए, ग्रेवसन[2] ने न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों को निम्न रूप में वर्गीकृत किया—

(i) एक पक्षीय;

(ii) सहमतिजन्य;

(iii) राज्य के किसी न्यायिक प्राधिकारी द्वारा, चाहे वह विधायी हो या कार्यपालक, सुनाया गया; या

(iv) धार्मिक ।

किन्तु उसने आगे यह कहा कि इनमें से चतुर्थ वर्ग के विवाह-विच्छेद धार्मिक विवाह-विच्छेद के बारे में ऐसा प्रतीत होता है कि या तो वे एकपक्षीय विवाह-विच्छेदों के वर्ग में आते हैं, जिनमें कोई धार्मिक पदाधिकारी थोड़ा सा भाग लेता है या वे न्यायिक विवाह-विच्छेदों के विस्तृत वर्ग में आते हैं, जैसा कि राबी (यहूदी) विधि में है[3] ।

हमारे प्रयोजनों के लिये यह ध्यान रखना पर्याप्त है कि उपस्थित पक्षकारों के कार्य पर आधारित विवाह-विच्छेदों, औपचारिक कार्यवाही की अपेक्षा करने वाले विवाह-विच्छेदों से दीर्घतर समस्यायें प्रस्तुत करते हैं। यह इस अध्याय[4] के बाद वाले पैरा में 'न्यायिक कार्यवाही' शब्दों की बाबत चर्चा से स्पष्ट हो जायेगा ।

न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों के उदाहरण ।

8.5 अब न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों के कुछ उदाहरणों के प्रति निर्देश दिया जाये । यहूदी विवाह-विच्छेद, पति द्वारा 'घाट' (विवाह-विच्छेद का विलेख), अर्थात् पत्नी को लिखित दस्तावेज का परिदान करके प्रभावी किया जाता है । विवाह-विच्छेद के लिये पत्नी की सहमति अनिवार्य है । इस संबंध में अनुष्ठान 'रब्बी और दो साक्षियों' के समक्ष किया जाता है । किन्तु विवाह-विच्छेद पति के कार्य द्वारा प्रभावी होता है, रबी और साक्षियों की आवश्यकता परिदान को अधिप्रमाणित करने के लिये और यह सुनिश्चित करने के लिये अधिक होती है कि विवाह-विच्छेद के लिये नैतिक आधार विद्यमान हैं और दोनों पक्षकार उस[5] कार्य के प्रति सहमति देते हैं और उसके तत्व को समझते हैं ।

1. ऊपर पैरा 6.8 सेक, देखिए ।
2. ग्रेवसन, "रिकोगनिशन आफ फारेन डाइवोर्स डिक्रीज" (1952) 37 ग्रोटियस सोसाइटी ट्रांजेक्शन्स, 148, 160 ।
3. (क) **सासन बनाम सासन** (1924) अपील केसेज, 1007 (पी० सी०),
   (ख) **प्रिगर बनाम प्रिगर** (1925) 42 टी० एल० आर० 281,
   (ग) **स्पिवेक बनाम स्पिवेक** (1930) 46 टी० एल० आर० 243 ।
4. आगे पैरा 8.13 एट सेक ।
5. पृष्ठ 611 पर 37 माडर्न ला रिव्यू देखिए ।

8.6 तलाक के रूप में मुस्लिम विवाह-विच्छेद, पति द्वारा 'तलाक' (तुम्हें तलाक देता हूं) शब्द को तीन बार सुनाकर पारम्परिक रूप से प्रभावी किया जाता है। इसमें पत्नी के उपस्थित होने की आवश्यकता नहीं होती और उसे, उसके साथ विवाह-विच्छेद करने के आशय की, पूर्व सूचना देने की भी आवश्यकता नहीं होती।

इस्लाम की प्राचीन विधि के अनुसार ये प्रक्रियाएं किसी न्यायालय या अन्य प्राधिकारी को कोई निर्देश किए बिना की जा सकती हैं। किन्तु आधुनिक समय में बहुत से मुस्लिम देशों में सिविल प्राधिकारी कुछ और औपचारिकताओं की भी अपेक्षा करते हैं, जो कि विवाह-विच्छेद का कार्य अधिक अधिकृत बनाती है या (जैसा कि पाकिस्तान और इजिप्ट में है) पत्नी[1] को और अधिक संरक्षण देती है।

III. 1971 के पूर्व इंग्लैंड की विधि

8.7 न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों के बारे में 1971 के पूर्व इंग्लैण्ड के मान्यता नियमों का विकास मुख्य रूप से बहु-पत्नीक विवाहों के संबन्ध में हुआ था और इसमें बहुत से परिवर्तन होते गए। आरम्भ में, ऐसे विवाह-विच्छेदों को मान्यता देने के प्रति अनिच्छा प्रकट की गई थी किन्तु बाद में उन्हें स्वीकार करने के लिए पर्याप्त तत्परता दिखाई गई। न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद।

न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों पर इंग्लैण्ड का महत्वपूर्ण मामला हर शफी[2] का है, जिसके प्रति हम यहां निर्देश कर रहे हैं, क्योंकि उसमें अधिकथित नियम कम से कम उस समय विधिमान्य था, जब 1971 का ऐक्ट पारित किया गया था। उस मामले में एक अधिवसित अंग्रेज महिला ने इजरायल में अधिवसित इजराइल के व्यक्ति से विवाह किया था। कुछ समय तक वे इंग्लैण्ड में साथ-साथ रहे, यद्यपि सभी तात्विक समयों पर पति ने इजराइल में अपना अधिवास बनाए रखा। पति ने इंग्लैण्ड में पत्नी को यहूदी "विवाह-विच्छेद का विलेख" परिदत्त किया, जिसका तात्पर्य विवाह को विघटित करना था और वह इजरायल वापस लौट गया। पत्नी इंग्लैण्ड में रही। उसने इंग्लैण्ड के न्यायालयों में इस घोषणा के लिए आवेदन किया कि उसका विवाह विधिमान्य रूप से विघटित हो गया था और अब वह अस्तित्व में नहीं था या विकल्पतः अब वह प्रत्यर्थी से विवाहित नहीं थी।

पत्नी की ओर से यह तर्क दिया गया था कि उस विवाह-विच्छेद को ध्यान में रखते हुए, पत्नी ने इंग्लैण्ड का अपना मूल अधिवास पुनः ग्रहण कर लिया था, और यह बात न्यायालय को उसकी प्रास्थिति की घोषणा करने के लिए अधिकारिता प्रदान करने के लिए पर्याप्त थी। लार्ड जस्टिस डैनिंग ने कहा: "अब इसमें एक अच्छा प्रश्न यह अन्तर्वलित है कि उसने इंग्लैण्ड में अपना अधिवास पुनः ग्रहण किया है या नहीं और यह इस बात पर निर्भर है कि विवाह-विच्छेद विधिमान्य है या नहीं। यदि विवाह-विच्छेद विधिमान्य है तो वह इंग्लैण्ड में अपना अधिवास पुनः ग्रहण करने के लिए स्वतंत्र है, और वास्तव में उसने उसे ग्रहण कर लिया है किन्तु यदि विवाह-विच्छेद अविधिमान्य है तो वह अभी तक अपने पति से विवाहित है, और पति का अधिवास अभी तक उसका बना हुआ है। इस प्रकार, न्यायालय की अधिकारिता विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता पर निर्भर करती है और विधिमान्यता पश्चात्वर्ती इजराइल की विधि पर निर्भर करती है। मेरा विचार है कि हमें पत्नी को इस प्रश्न का अवधारण करवाने के लिए इजराइल नहीं भेजना चाहिए। इंग्लैण्ड के न्यायालय इजराइल की विधि का साक्ष्य सुन सकते हैं और यह विनिश्चय कर सकते हैं कि विवाह-विच्छेद उस विधि द्वारा विधिमान्य है या नहीं। यदि यह उस विधि द्वारा मान्य है तो इंग्लैण्ड के न्यायालय उसके बारे में ऐसे घोषणा करने की अधिकारिता रखते हैं।

अन्ततोगत्वा, उस विवाह-विच्छेद को मान्यता दी गई थी क्योंकि वह अधिवास की विधि द्वारा मान्य था।

8.8 इस प्रकार, हर शफी **बनाम** हर शफी[3] में, जहां विवाह-विच्छेद के विलेख के परिदान द्वारा यहूदी विवाह-विच्छेद के सम्बन्ध में मान्यता दी जाने का प्रश्न उठा था, अपील न्यायालय के विनिश्चय में यह

---

1. पृष्ठ 612 पर 37 माडर्न ला रिव्यू देखिए.
2. (क) हर शफी बनाम हर शफी सं० 1 (1953) 1 आल ई० आर० 983। टिप्पणी के लिए (1953) 30 एस० वाई० बी० आई० एल० पृष्ठ 524 से 527 देखिए.
   (ख) हर शफी सं० 2 (1953) 2 आल ई० आर० 373.
3. हर शफी (1953) 1 आल ई० आर० 783.

था कि वह प्रश्न किसी डिक्री की विधिमान्यता पर नहीं, किन्तु इस बात पर निर्भर था कि ऐसे विवाह-विच्छेद को अधिवास के न्यायालय द्वारा, अर्थात् इजराइल गणराज्य द्वारा मान्यता दी जाएगी या नहीं। सेसन बनाम सेसन [1]क में प्रिवी कौंसिल का विनिश्चय उसी प्रकार के विवाह-विच्छेद के समान विवाह-विच्छेद की विधि-मान्यता को अधिवास के न्यायालय द्वारा मान्यता दी जाने के तथ्य पर आधारित था। आर्मिटेज बनाम ए० जी०[2] दर्शित करता है कि विवाह-विच्छेद को इस बात के होते हुए भी मान्यता दी जाएगी कि उसमें अधिवास के न्यायालय की कोई डिक्री नहीं है, परन्तु यह तब जब कि यह साबित कर दिया जाता है कि उसे अधिवास के न्यायालय द्वारा मान्यता दी जाएगी।

रत्नावाय बनाम रत्नावाय[3] में मान्यता उन विवाह-विच्छेदों को दी गई थी जो अधिवास की विधि द्वारा विधिमान्य थे, भले ही वे किसी न्यायालय द्वारा नहीं सुनाए गए हों।

न्यायिक विधि।

8.9 इंग्लैंड के इस विचार का समर्थन नहीं किया गया है कि विधि विदेशी विवाह-विच्छेद को तब तक मान्यता नहीं देगी जब तक कि वह 'किसी न्यायालय द्वारा डिक्रीत न हो या' उसमें कोई न्यायिक प्रक्रिया अन्तर्वलित न हो"।[4] किन्तु रस (अदर्स जैफर्स) बनाम रस[5] में अपील न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस तथ्य का आश्रय लिया कि विदेशी विवाह-विच्छेद में कोई न्यायिक प्रक्रिया अंतर्वलित थी जोकि उसका हैमस्मिथ के विवाह वाले मामले[6] से प्रभेद करने वाला तत्व था।

लो बनाम लाऊ[7] के मामले में हांगकांग में पति और पत्नी द्वारा किए गए विवाह-विच्छेद के करार के बारे में, जिसमें कोई न्यायिक कार्य नहीं किया गया था, यह अभिनिर्धारित किया गया कि उस करार ने उनके बीच विधिमान्य रूप से विवाह विघटित किया था। इस मामले में, पति और पत्नी हांगकांग में पैदा हुए थे, और वहां वे अपने बचपन में रहे थे।

मैंनिंग बनाम मैंनिंग[8] में नार्वे में दिए गए विवाह-विच्छेद को इंग्लैंड में न्यायालय द्वारा मान्यता दी गई थी। उस विवाह-विच्छेद को न्यायालय द्वारा नहीं किन्तु प्रशासकीय प्राधिकारी—ओगन के काउन्टी गवर्नर द्वारा मंजूर किया गया था।

संक्षेप में स्थिति।

8.10 उपर्युक्त निर्णयज विधि के आधार पर 1971 के पूर्व की स्थिति का निम्नलिखित रूप में संक्षेपण किया जा सकता है:—

(क) यदि अधिवास को विधि द्वारा, पक्षकारों को विवाहित प्रास्थिति निर्वापित कर दी गई है,

(ख) यदि, अधिवास को विधि द्वारा, विवाहित प्रास्थिति निर्वापित की गई है तो उस तथ्य को इंग्लैंड[9] में मान्यता दी जानी चाहिए।

इस प्रकार प्रश्न पूर्णतः विघटन के समय पक्षकारों के अधिवास पर निर्भर हो गया।

(1) यदि पक्षकार, उस तारीख को, इंगलैंड में अधिवसित थे, तो विवाह-विच्छेद का, इंग्लैंड की विधि[10] के अनुसार, उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था।

(2) किन्तु यदि पक्षकार उस तारीख को देश से बाहर किसी ऐसे देश में अधिवसित थे जिसकी विधि इस बात को मान्यता देती है कि पक्षकारों को (या उनमें से एक को) न्यायालयों में जाए बिना

1क. सेसन बनाम सेसन, (1924) ए० जी० 1007.

2. आर्मिटेज बनाम एंजी० (1906) प्रोबेट 135.

3. रत्नावाय बनाम रत्नावाय (जून 3, 1960), "दि टाइम्स" जून 4, 1960 जो रस बनाम रस (1964) प्रोबेट 315 में उद्धृत किया गया है.

4. (1957) 35 केना बार आर० 642, 645 काबन (1952) 68 एल० क्यू० आर० 88, 92 में केनेड़ी.

5. रस बनाम रस, (1954) प्रोबेट 315.

6. हैमरस्मिथ मैरेज केस (1917).

7. ली बनाम लाऊ (1964) 2 आल ई० आर० 248: (1965) 28 माडर्न ला रिव्यू 109 में वैब द्वारा टिप्पण.

8. मैंनिग बनाम मैंनिग (1958) 1 आई ई० आर० 291, जिसके बारे में (1958) 21 माडर्न ला रिव्यू 415 में उंगेर द्वार विचार प्रकट किए गए हैं.

9. कुरेशी बनाम कुरेशी, (1972) 1 आल ई० आर० 325.

10. प्रेजर बनाम प्रेजर, (1926) 42, टी० एल० आर० 291, 283.

विवाह समाप्त करने की प्रभावी शक्ति थी तो ऐसी शक्ति का प्रयोग) इंग्लैंड की विधि[1] में, विधि-मान्य रूप से विवाह विघटित कर सकता था।

(ग) इस प्रयोजन के लिए न्यायालय के लिए यह पूछना सुसंगत नहीं है कि विवाह कहां अनुष्ठापित किया गया था और यह भी कि विघटन कहां प्रभावी हुआ था। परिणामस्वरूप, इंग्लैण्ड के न्यायालयों ने 'तलाक' विवाह-विच्छेद को मान्यता दी है कि भले ही विवाह इंग्लैण्ड में इंग्लैण्ड की विधि की अपेक्षाओं के अनुसार किया गया हो या नहीं और न्यायिकेत्तर प्रक्रिया इंग्लैण्ड[2] में हुई हो या नहीं।

IV. 1971 का ऐक्ट

8.11 अब हम 1971 के इंग्लैंड के ऐक्ट—दि रिकोग्निशन ऑफ फारेन डाइवोर्सेज एण्ड सैप्रेशन्स ऐक्ट, 1971—के अधीन न्यायिकेत्तर कार्यवाहियों के बारे में स्थिति की चर्चा करेंगे। 1971 के ऐक्ट की धारा 2 के अधीन, "न्यायिक या अन्य कार्यवाहियों" द्वारा दिए गए विवाह-विच्छेद को, ऐक्ट में अधिकथित अन्य शर्तों के अधीन मान्यता दी जाती है। किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि इन शब्दों के अन्तर्गत "तलाक" है या नहीं। यदि इन शब्दों में "तलाक" है तो, जैसा कि बहुधा बताया जाता है, पत्नी के लिए एकमात्र संरक्षण यह है कि उसे कार्यवाहियों[3] की सूचना अवश्य दी जानी चाहिए और यदि कार्यवाहियां स्पष्टतः लोकनीति[4] के विरुद्ध हों तो मान्यता प्रतिधारित कर ली जानी चाहिए। 1971 के ऐक्ट के अधीन न्यायिकेत्तर विवाह विच्छेदों की बाबत स्थिति।

8.12 किन्तु यह उल्लेखनीय है कि "लोकनीति" का विधि के इस क्षेत्र में कदाचित ही आश्रय लिया गया है। इस लिए यह प्रश्न सामने आता है कि इस ऐक्ट में "कार्यवाहियों" के अन्तर्गत "तलाक" है या नहीं। इस प्रश्न का उत्तर देना सरल नहीं है।

8.13 1971 के ऐक्ट की धारा 8 की उपधारा (2)(ख) अपने उपबन्धों को उस विवाह-विच्छेद को लागू करती है, जो कि ब्रिटिश द्वीप समूह से बाहर किसी देश में, "न्यायिक या अन्य कार्यवाहियों" के द्वारा, यदि वे उस देश की विधि के अधीन प्रभावी है, "अभिप्राप्त किया गया है"। इस प्रश्न पर कि "कार्यवाहियों" के अन्तर्गत न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद आता है या नहीं, हाऊस ऑफ लार्ड्स[5] में इस विधेयक पर विचार-विमर्श किए जाते समय चर्चा की गई थी किन्तु कोई निर्णय नहीं हुआ था। 'न्यायिक या अन्य कार्यवाहियां' अभिव्यक्ति।

1971 के ऐक्ट के पश्चात् विनिश्चित किए गए रंडवान[6] के मामले में यह मान लिया गया था, किन्तु इस पर विनिश्चय नहीं किया गया था कि 1971 के ऐक्ट[7] की धारा 2 न्यायिकेत्तर विवाह-विच्छेद को लागू थी, क्योंकि "अन्य कार्यवाहियां" धारा 2 के अर्थान्तर्गत हैं।

8.14 1971 के इंग्लैण्ड के ऐक्ट में, "अन्य कार्यवाहियां" शब्दों की संदिग्धता को उस संदिग्धता[9] को जो कि हैग कन्वेंशन[10,11] के सुसंगत पैरा में भी पाई जाती है—दृष्टि में रखते हुए यह प्रतीत होता है कि यह दृष्टिकोण अपनाना संभव है कि न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद—(i) 1971 के ऐक्ट द्वारा शासित नहीं होते हैं, और (ii) कामन ला द्वारा शासित होते हैं। 1971 के ऐक्ट[8] के अधीन स्थिति।

---

1. हर शफी बनाम हर शफी (सं० 2), (1953), ट्रोबेट 220, 224.
2. कुरेशी बनाम कुरेशी, (1971) 1 आल० ई० आर० 325.
3. 1971 के ऐक्ट की धारा 2.
4. 1971 के ऐक्ट की धारा 8(2)(ख).
5. हाऊस आफ लार्ड्स की बहस के लिए, जिल्द 315, जिल्द 483 से 497 तक, जिल्द 316, स्तम्भ 1043 से 1051 तक और जिल्द 322, स्तम्भ 851 और 854 देखिए.
6. रंडवान बनाम रंडवान, (1972) 3 डब्ल्यू० एल० आर० 735, 739.
7. ऊपर पैरा 8.4.
8. ऊपर पैरा 8.5.
9. आग, परा 8.19 एट सेक, देखिए.
10. हेग कन्वेन्शन का आर्टिकल.
11. आगे का पैरा 8.17.

8.15 यह नहीं कहा जा सकता है कि यह समस्या नई है। इस पर ध्यान दिया जाए कि रायल कमीशन ग्रान मेरिज एण्ड डाइवोर्स[1] ने "न्यायिक प्रक्रिया द्वारा या अन्यथा प्राप्त किए गए उस विदेशी विवाह-विच्छेद को मान्यता दी जाने की सिफारिश की थी जो कि उस देश की विधि के अनुसार मंजूर किया गया था, जिसमें पति या पत्नी में से एक या पति पत्नी दोनों, कार्यवाहियों के समय अधिवसित थे।

V. 1973 का ऐक्ट

इंग्लैंड के विवाह-विच्छेदों के सम्बन्ध में 1973 का ऐक्ट।

8.16 इस प्रक्रम पर हम यह भी कह सकते हैं कि यूनाइटेड किंगडम में एक पक्षकार द्वारा या किसी न्यायिकेत्तर प्राधिकारी द्वारा सुनाए गए न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों की बाबत स्थिति अब डोमोसाइल एण्ड मेट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स ऐक्ट, 1973 की धारा 16(1) द्वारा परिवर्तित कर दी गई है, जिसमें कि यह उपबन्ध किया गया है कि "यूनाइटेड किंगडम" चैनेल आइलैण्ड्स या आइल आफ मैन में की गई किसी कार्यवाही की बाबत यह नहीं माना जाएगा कि वह विधिमान्य रूप से विवाह विघटित करती है जब तक कि उसे इन देशों में किसी देश के न्यायालय में संस्थित न किया गया हो"। किन्तु धारा 16(3) के अधीन, यह उपबन्ध 1974 के पूर्व अभिप्राप्त किए गए किसी विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता को प्रभावित नहीं करता, जिनको कि पूर्वतन मान्यता नियमों के अधीन अर्थात् कामन ला रूल्स[2] के अधीन विधिमान्य माना जाएगा। इस प्रकार धारा 16, 1973 के पश्चात् इंग्लैण्ड में अभिप्राप्त किए गए किसी भी न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद को मान्यता देने से इंकार करती प्रतीत होती है और **कुरेशी**[3] बनाम **कुरेशी** जैसे मामले में दिए गए विनिश्चय को उलट देती है।

किन्तु न्यायिकेतर रूप में अभिप्राप्त किए गए ऐसे विवाह-विच्छेदों के बारे में, जो विदेश में प्राप्त किए गए हैं, संदिग्धता बनी रहती है।

साहित्य।

8.16 क ला क्वार्टरली रिव्यू[4] में हाल ही के अंक में न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों के प्रश्न पर विचार किया गया है और इस विषय पर पूर्वतर आर्टिकल[5] के प्रति निर्देश किया गया है। विवेचन दर्शित करती है कि स्थिति निश्चित नहीं है।

VI. 1971 के ऐक्ट के अधीन अनिश्चितता

हेग सम्मेलन में बहस।

8.17 इस प्रकार विदेशी न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों की बाबत स्थिति, जहां तक इंग्लैंड में उनकी मान्यता का संबन्ध है, अनिश्चित है।

हेग कन्वेन्शन का आर्टिकल[1] ऐसे विवाह-विच्छेद और विधिक पृथक्करणों की मान्यता के प्रति निर्देश करता है "जो कि ऐसी न्यायिक या अन्य कार्यवाहियों के आधार पर दिए गए हैं, जिन्हें उस राज्य में जहां विवाह-विच्छेद प्राप्त किया गया था शासकीय रूप से मान्यता दी गई है"। प्रथम मूल ड्राफ्ट कन्वेन्शन में "अन्य कार्यवाहियां" पद का प्रयोग किया गया है और उसको टिप्पणी में कहा[6] गया है—

> "कार्यवाहियां पद यह दर्शित करता है कि वैवाहिक बन्धनों को पृथक् करने वाले केवल वे ही रूप कन्वेन्शन के अन्तर्गत आते हैं जिनमें कि, पक्षकारों से स्वतंत्र, किसी शासकीय प्राधिकारी ने कार्यवाही की है। ऐसे अधिकारी, अर्थात् नोटरी पब्लिक जो केवल पति के अनुरोध पर कार्य करेंगे और पत्नी के संबन्ध विच्छेद को मात्र शासकीय टिप्पण करेंगे, कन्वेन्शन से निकाल दिए जाएंगे।"[7]

किन्तु, बहुत से राज्य "कार्यवाहियों" की आवश्यकता के विषय क्षेत्र के बारे में और विशेष रूप से इस बात के बारे में कि यह अपेक्षा यहूदी और मुस्लिम विवाह-विच्छेदों[8] को मान्यता देने की अनुज्ञा देगी या नहीं, सशंक थे। यूनाइटेड किंगडम ने इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए एक संशोधन प्रस्थापित किया जिसमें कि

1. रायल कमीशन रिपोर्ट, ग्रोम्ड, 9678 (1956), ड्राफ्ट सेक्शन 8।
2. दि डोमिसाइल एटसेट्रा ऐक्ट, 1973 की धारा 16।
3. **कुरेशी** बनाम **कुरेशी** (1971) 3 आल ई० आर० 315।
4. जार्फेव, "रिकोगनिशन आफ एक्स्ट्रा ज्यूडिशियल डाइवोर्सेज (नोट) (1975 जुलाई) 91 ला क्वार्टरली रिव्यू 320।
5. नोर्थ, रिकोगनिशन आफ एक्स्ट्रा ज्यूडिशियल डाइवोर्सेज (1975) 91 ला क्वार्टरली रिव्यू 36।
6. कन्वेन्शन के आर्टिकल 1 की कुछ सामग्री पी० एम० नार्थ के एक्स्ट्रा ज्यूडिशियल डाइवोर्सेज (1975 जनवरी), 91, एल० क्यू० आर० 36, 48 से 50 तक से ली गई है।
7. हेग सम्मेलन (1970) के 11वें अधिवेशन की कार्यवाहियां पृष्ठ 19।
8. हेग सम्मेलन (1970) के 11वें अधिवेशन की कार्यवाहियां, पृष्ठ 76, 81, 83 पर देखिए,।

यह कन्वेन्शन "विवाह विच्छेद" के चाहे कोई भी रूप या उसकी कोई भी पद्धतियां हों जिसको कि राज्य उपबन्ध करे या जिनकी अनुज्ञा दे[1]; उन्हें लागू करे।

किन्तु यूनाइटेड किंगडम का संशोधन, नामंजूर कर दिया गया, यद्यपि इस बारे में शंका प्रकट की गई कि विवाह-विच्छेद के कुछ रूप, उदाहरण के लिए "तलाक" विवाह-विच्छेद के मूल प्रारूप के अन्तर्गत आएंगे या नहीं।

हाऊस आफ कामन्स में बहस।

8.18 हेग कन्वेन्शन को कार्यान्वित करने वाले रिकोगनिशन आफ डाइवोर्सेस एण्ड लीगल सेप्रेशन बिल, 1971 पर बहस के दौरान हाऊस आफ कामन्स में, कमेटी में[2] और रिपोर्ट में दोनों ही प्रक्रमों[3] पर, 1971 के ऐक्ट के सेक्शन 2 में प्रयुक्त "अन्य कार्यवाहियां" शब्दों के अर्थान्वयन के प्रति उत्सुकता व्यक्त की गई थी। तलाक और अन्य अनौपचारिक विवाह-विच्छेदों के लिए अधिक विनिर्दिष्ट उपबन्ध बनाने के लिए संशोधन पुरःस्थापित किए गए थे[4]। चिन्ता का मुख्य कारण यह था कि क्या ऐक्ट[5] की अन्य धाराओं में "कार्यवाहियों" पद के प्रयोग से निम्नलिखित की पूर्वधारणा नहीं होती थी :

> "एक प्रकार की अर्द्ध-न्यायिक प्रकृति और इसमें प्रतिविरोधरत पक्षकारों के सम्बन्ध में या ऐसे पक्षकारों के सम्बन्ध में जो प्रतिविरोध करने में समर्थ हों, किसी व्यक्ति या अधिकरण द्वारा किसी प्रकार का विनिश्चय भी, न कि विवाह के एक पक्षकार द्वारा विवाह-विच्छेद की मात्र उद्घोषणा अन्तर्वलित है।"[6]

'अन्य कार्यवाहियां' के अन्तर्गत 'एकल कार्य या घटना' आती हैं या नहीं।

8.19 आगे की समस्या, जिस पर कि विधेयक पर बहस के दौरान चर्चा की गई थी, यह थी कि "अन्य कार्यवाहियां" वाक्यांश के अन्तर्गत अधिक सामान्य घटनाक्रमों के बजाय किसी एकल कार्य या घटना[7] द्वारा, जैसे तलाक के कुछ मामलों में होता है विवाह-विच्छेद दिया जाना है या नहीं। किन्तु सालिसिटर जनरल[8] द्वारा ये आपत्तियां स्वीकार नहीं की गई थीं, उन्होंने यह कहा था कि ऐक्ट का आशय सभी अनौपचारिक विवाह-विच्छेदों को मान्यता देने का नहीं, किन्तु केवल उन विवाह-विच्छेदों को मान्यता देने का है जो कि शासकीय कार्य[9] की प्रकृति या क्वालिटी के हैं।

श्री सिल्किन[10] ने कुछ शब्दों को अन्तःस्थापित करने की प्रस्थापना की थी जिससे कि वाक्यांश को "न्यायिक या अन्य कार्य या कार्यवाहियां" के रूप में पढ़ा जा सके। किन्तु सालिसिटर जनरल ने कहा "मैं सुझाव देता हूं कि "या अन्य कार्यवाहियां" शब्दों का समावेश कम से कम, सर्वप्रथम, इतना तो स्पष्ट कर देता है कि अन्य कार्यवाहियों के स्वयं न्यायिक होने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि मैं समझता हूं कि सम्मान्य और विद्वान महानुभाव को स्वीकार्य है।

> "इसका अभिप्राय यह है कि "अन्य कार्यवाहियां" के अन्तर्गत प्रशासकीय कार्यवाहियां, जिनमें किसी सरकारी कार्यालय में करणीय रजिस्ट्रीकरण या कानून द्वारा विवाह-विच्छेद है, आती है। इसके अन्तर्गत ऐसी कार्यवाहियां भी आ सकती हैं जैसे वे कार्यवाहियां जिनमें किसी पदाधिकारी द्वारा कार्यवाही अन्तर्वलित न हो, नितान्त विधिक पैटर्न का अनुसरण करने वाली कार्यवाहियां जैसे कार्यवाहियां जो तलाक विवाह-विच्छेद में की जाती हैं, जिनमें शासकीय पदाधिकारी कोई हिस्सा नहीं लेते और जिनमें कोई शासकीय कार्य उनका रजिस्ट्रीकरण[11] करने के लिए आवश्यक नहीं होता।

> "सम्मान्य और विद्वान महानुभाव का मुद्दा तो बहुत अच्छा है किन्तु "कार्यवाहियों" में अध्युपायों का क्रम, औपचारिकता और अधिकारितंत्र और न्यायिकता, की मात्रा विवक्षित हैं, जिसको परिणामस्वरूप

---

1. हेग सम्मेलन (1970) के 11वें अधिवेशन की कार्यवाहियां पृष्ठ 94 पर देखिए।
2. स्टैंडिंग कमेटी बी, जून 22, 1971, स्तम्भ 3.10.
3. हाऊस आफ कामन्स में डिबेट्स, जिल्द 821, स्तम्भ 165–171 (12 जुलाई, 1974).।
4. ई० जी० मि० सिल्किन "कार्य या कार्यवाही"।
5. धारा 3, 4, 5, 8.
6. स्टैंडिंग कमेटी बी, जून 22, 1971, स्तम्भ 4।
7. हाऊस आफ कामन्स डिबेट्स, जिल्द 821, स्तम्भ 167–168 (12 जुलाई, 1974).।
8. सर जाफ हो।
9. हाऊस आफ कामन्स डिबेट्स, जिल्द 821, स्तम्भ 169–170 (12 जुलाई, 1974)।
10. मि० सिल्किन के० सी०, अब अटर्नी जनरल।
11. हाऊस आफ कामन्स डिबेट्स, खण्ड 821 स्तम्भ 169–170।

बिल में से, पक्षकारों द्वारा किए गए उस एकल कार्य को निकाल देना पड़ सकता है जिनके फलस्वरूप उस देश में विवाह-विच्छेद हो, जिसमें वह कार्य किया गया है। कठिनाई यह है कि यदि कोई उस प्रकार का एकल उपाय करता है जसे कार्यवाहियों[1] के विरुद्ध कोई कार्य या ऐसी कोई कार्यवाही भी जोकि उन विकल्पों में से एक थी जिन पर कि मैंने एक बार विचार किया था—तो ऐसी अनौपचारिक कार्यवाही पर पहुंचा जा सकता है जोकि इसे मान्यता के इस प्रकार के ढांचे के भीतर लाना कठिन बना दे।

"यह बिल और इस प्रकार का कोई भी बिल समय के उस क्षण विशेष की, अधिकारिता की दृष्टि से पहचान करने की संभावना पर निर्भर होना चाहिए, जिस पर कि उस कार्य या कार्यवाही का ऐसे कार्य और उस अधिकारिता से तादात्म्य स्थापित किया जा सके जिसकी कि विधि के अधीन यह मामला विधिमान्य होगा।"

8.20 इस प्रक्रम पर मि० सिल्किन ने अन्तरायण करते हुए यह कथन किया :—

"क्या अनौपचारिकता का वहां तक महत्व होगा जहां तक कि संबन्धित देश इस से परिणामित होने वाले विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता को स्वीकार करता है ? क्या यह कन्वेंशन के आशय की मूल बात नहीं है ? इस बारे में सालिसिटर जनरल यह उत्तर दिया—

"मैं कन्वेंशन के आशय के बारे में पुनः विश्लेषण नहीं करना चाहता हूं, किन्तु इस देश में क्या करणीय है और स्वीकार्य है इस बारे में मूल बात का पता करने के लिए यह किया जाना चाहिए कि यदि हम मान्यता के लिए शीघ्रगामी स्वतः सक्रिय तंत्र का उपबन्ध कर रहे हैं, जिसके लिए वास्तव में उसके खण्डों में उपबन्ध किया गया है, तो यह संभव होना चाहिए कि उस कार्य या कार्यवाही की प्रकृति को शीघ्र और स्वतः पहचाना जा सके, जो कि मान्यता के लिए अर्हता प्राप्त है और हमें इस बात से समाहित होना चाहिए कि उस समय जब वह कार्य या कार्यवाही की गई थी या की जा रही थी, राष्ट्रिकता की आवश्यक अधिकारक्षेत्रीय कड़ी को या चाहे वह कुछ भी हो, पूरा किया जा सकता था।

8.21 सालिसिटर जनरल ने इस विषय पर विस्तार से इस प्रकार प्रकाश डाला:—

"यदि कोई व्यक्ति, उदाहरण के लिए इस विषय पर, "कार्यवाहियों" के बजाय "कार्य" शब्द के संदर्भ में दृष्टिपात करता है और उसके पश्चात् न्यायिक कार्य के बारे में विचार करता है, तो यह विनिश्चय करने की शीघ्र ही संभावित कठिनाइयां उपस्थित हो जाती हैं कि प्रश्नगत न्यायिक कार्य क्या अर्जी की तामील है या अपेक्षात्मक डिक्री अथवा आत्यंतिक डिक्री प्रदान करना है। इस बात की किसी स्पष्टता के साथ पहचान करना संभव नहीं है, क्योंकि खंड 3 के अधीन, जैसा कि वह है, "········कार्यवाहियों के संस्थित करने की तारीख को ········" शब्द प्रयुक्त किए गए हैं।"

यदि हम अन्तःस्थापित करें कि,—

"········उस कार्य या कार्यवाहियों के संस्थित करने की तारीख को ········",

तो हम उस आधार पर थोड़े अनिश्चित हो जाते हैं।" सालिसिटर जनरल ने यह कहकर अपना कथन समाप्त किया कि मैं माननीय और विद्वान सदस्य को और हाउस को सुझाव देता हूं कि उनकी समस्या का समाधान यह है कि जब हम कोई कार्यवाही या कार्य पर आरम्भ करते हैं जो कि इतना अनौपचारिक है जितना कि वह उसके विचार में है, तो पक्षकारों को खंड 6 के उन उपबन्धों का आश्रय लेना होगा, जोकि उस विवाह-विच्छेद और विधिक पृथक्करण को संभव बताते हैं जोकि पक्षकारों के अधिवास से जनित विधि के नियम के आधार पर, जिसे कि अभी इस देश में मान्यता दी जाती है, विधिमान्य है। किन्तु इसके लिए सबूत के अपेक्षाकृत अधिक संश्लिष्ट साधन और मान्यता की स्थापना अपेक्षित होगी। किन्तु यह लंबा कार्य है और ऐसा रक्षा तंत्र है जोकि इस समस्या को निपटाने के लिए पर्याप्त है।

जहां तक 1971 के ऐक्ट के निर्वचन का प्रश्न है, यह मामला यहां समाप्त हो जाता है।

1. बल दिया गया।

8.22 उपर्युक्त चर्चा से यह दर्शित होगा कि "या अन्य कार्यवाहियां" शब्द इतने स्पष्ट नहीं हैं कि उनके अन्तर्गत न्यायिकेतर विवाह-विच्छेद कम से कम ऐसे विवाह-विच्छेद जो कि किसी प्राधिकारी के समक्ष नहीं किए जाते हैं, आ सकें। "या अन्य कार्यवाहियों" शब्दों की संदिग्धता—न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों को अन्तर्गत लाने की आवश्यकता।

VII. सिफारिश

8.23 उपर्युक्त कारणों से यह उपबन्ध करना वांछनीय है कि प्रस्थापित विधेयक न्यायिकेतर विवाह-विच्छेदों को भी लागू होना चाहिए। "कार्यवाहियां" शब्द को परिभाषित करके और उसके अन्तर्गत कोई ऐसा कार्य भी सम्मिलित करके जो विवाह के विघटन को प्रभावी करने के लिए विधितः पर्याप्त हो, यह उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है, चाहे वह कार्य कितना भी औपचारिक हो और चाहे उसमें कोई औपचारिकता या विधिक प्रक्रिया अपेक्षित हो या नहीं। यह उपबन्ध भी किया जा सकता है कि "संस्थित करना" शब्द से जहां कार्यवाहियां किसी प्राधिकारी के समक्ष नहीं है किन्तु किसी अन्य कार्य द्वारा गठित होती है, उस कार्य का आरम्भ अभिप्रेत होगा। निष्कर्ष।

अध्याय 9

हेग कन्वेंसन

प्रारम्भिक ।

9.1 इस अध्याय में हम हेग कन्वेंशन[1] के मुख्य उपबन्धों के बारे में संक्षेप में बताएंगे।

कन्वेंशन का विस्तार क्षेत्र ।

9.2 कन्वेंशन के विस्तार क्षेत्र के बारे में आर्टिकल 1 से पता चलता है। यह कन्वेंशन किन्हीं अन्य संविदाकारी राज्यों में अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की, जो ऐसी न्यायिक या अन्य कार्यवाहियों के अनुसार हुए हैं जिन्हें कि उस राज्य में मान्यता दी गई है और जो कि वहां विधिक रूप से प्रभावी हैं, किसी संविदाकार राज्य में मान्यता के लिए लागू होगा।

उसी आर्टिकल (आर्टिकल 1) में यह उपबन्ध किया गया है कि यह कन्वेंशन दोष विषयक निष्कर्षों पर विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की डिक्री दी जाने पर सुनाए गए आनुषंगिक आदेशों या दोष खोजने को लागू नहीं होगा, विशेष रूप से यह बालकों की धनीय दायित्वों या बच्चों को अभिरक्षा से सम्बन्धित आदेशों को भी लागू नहीं होगा।

आभ्यासिक निवास और राष्ट्रिकता को मान्यता देने के लिए बाध्यता ।

9.3 आर्टिकल 2 में उपबन्ध किया गया है कि उन विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों को, जिनको यह कन्वेंशन लागू होता है[2], सभी अन्य संविदाकारी राज्यों में, इस कन्वेंशन के शेष निबन्धनों के अध्यधीन रहते हुए, मान्यता दी जाएगी, यदि विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण वाले (जिसे यहां मूल राज्य के रूप में निर्दिष्ट किया गया है) राज्य में कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को,—

(1) प्रत्यर्थी का वहां आभ्यासिक निवास था, या

(2) अर्जीदार का वहां आभ्यासिक निवास था और निम्नलिखित अतिरिक्त शर्तों में से किसी की पूर्ति होती थी—

  (क) ऐसा आभ्यासिक निवास कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के अव्यवहित कम से कम एक वर्ष पूर्व से जारी रहा था,

  (ख) पति या पत्नी ने अन्तिम बार वहां एक साथ अभ्यासतः निवास किया था, या

(3) दोनों पति एवं पत्नी उस राज्य के राष्ट्रिक थे, या

(4) अर्जीदार उस राज्य का राष्ट्रिक था और निम्नलिखित शर्तों में से एक शर्त पूरी होती थी:—

  (क) अर्जीदार का वहां आभ्यासिक निवास था, या

  (ख) उसने वहां कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने से पूर्ववर्ती दो वर्ष के अन्तर्गत आने वाली कम से कम भागतः एक वर्ष की लगातार अवधि पर्यन्त निवास किया था, या

(5) विवाह-विच्छेद का अर्जीदार उस राज्य का राष्ट्रिक था और निम्नलिखित दोनों अतिरिक्त शर्तें पूरी होती थीं —

  (क) अर्जीदार कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को उस राज्य में उपस्थित था, और

  (ख) पति और पत्नी ने उस राज्य में अन्तिम बार एक साथ अभ्यासतः निवास किया था जिसकी विधि में, कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को, विवाह-विच्छेद के लिए उपबन्ध नहीं किया गया था।

---

1. कन्वेंशन के पाठ के लिए (1969) 18 आई० सी० एल० क्यू० 657 देखिए।

2. आर्टिकल 1 आगे पैरा 9.7।

9.4 आर्टिकल 3 के अधीन, जहां उद्भव वाला राज्य (विवाह-विच्छेद वाला राज्य आदि) अधिवास की धारणा का, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के मामले में अधिकारिता की कसौटी के रूप में प्रयोग करता है, वहां आर्टिकल 2 में आए "आभ्यासिक निवास" पद से यह समझा जाएगा कि उसके अन्तर्गत अधिवास आता है जिस रूप में कि वह शब्द उस राज्य में प्रयुक्त किया गया है। अधिवास।

तथापि यह प्रतिपादना पत्नी के आश्रय के अधिवास को लागू नहीं होगी।

9.5 आर्टिकल 4 यह स्पष्ट करता है कि जहां प्रतियाचिका दी गई है वहां याचिका या प्रतियाचिका पर दिए जाने वाले विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता दी जाएगी, यदि दोनों में से कोई भी आर्टिकल 2 या 3 के निबन्धनों के अन्तर्गत आता हो। प्रति याचिकाएं।

9.6 आर्टिकल 5 के अधीन, जहां इस कन्वेंशन के निबन्धनों के अनुरूप विधि पृथक्करण उद्भव के राज्य में विवाह-विच्छेद के रूप में संपरिवर्तित कर दिया जाता है, वहां विवाह-विच्छेद को मान्यता देने से इस कारण से इंकार नहीं किया जाएगा कि आर्टिकल 2 या 3 में कथित शर्तें विवाह-विच्छेद कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने के समय पूरी नहीं की गई थीं। विवाह-विच्छेद के रूप में संपरिवर्तित विधिक पृथक्करण।

9.7 आर्टिकल 6 के प्रथम पैरा में यह उपबन्ध किया गया है कि जहां प्रत्यर्थी कार्यवाहियों में हाजिर हुआ है, वहां उस राज्य के प्राधिकारी, जिसमें कि विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की मान्यता मांगी गई है, उस तथ्य सम्बन्धी निष्कर्षों से आबद्ध होंगे, जिसके आधार पर अधिकारिता ग्रहण की गई थी। तथ्य सम्बन्धी निष्कर्ष।

9.8 आर्टिकल 6 के द्वितीय पैरा के अधीन, विवाह-विच्छेद या विधिक प्रथक्करण की मान्यता से इसलिए इन्कार नहीं किया जाएगा–– विधि।

(क) क्योंकि उस राज्य की आन्तरिक विधि, जिसमें ऐसी मान्यता मांगी गई है, उन्हीं तथ्यों पर यथा-स्थिति, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के लिए अनुज्ञा नहीं देगी, या

(ख) क्योंकि उस विधि से, जोकि उस राज्य की प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अधीन लागू थी, भिन्न विधि लागू की गई थी।

9.9 आर्टिकल के तीसरे पैरा के अधीन, "ऐसे पुनर्विलोकन पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जो इस कन्वेंशन के अन्य उपबन्धों के लागू किए जाने के लिए आवश्यक हो, उस राज्य के प्राधिकारी, जिसमें विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के लिए मान्यता मांगी गई है, विनिश्चय के गुणागुण की परीक्षा नहीं करेंगे"। गुणागुण।

9.10 आर्टिकल 7 यह बताता है कि संविदाकारी राज्य ऐसे विवाह-विच्छेद को मान्यता देने से इन्कार कर सकते हैं, जिसमें कि उस समय, जब वह अभिप्राप्त किया गया था, दोनों पक्षकार ऐसे राज्यों के, जो विवाह विच्छेद के लिए उपबन्ध नहीं करता था, न कि किसी अन्य राज्य के, राष्ट्रिक थे। मान्यता देने से इंकार।

9.11 आर्टिकल 8 के अधीन, यदि सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी को विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की कार्यवाहियों की सूचना देने के लिए पर्याप्त उपाय नहीं किए गए थे या उसे अपना मामला प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया गया था तो विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता देने से इन्कार किया जा सकता है। सूचना।

9.12 संविदाकारी राज्य, आर्टिकल 9 के अधीन, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता देने से इन्कार कर सकते हैं, यदि वह पति या पत्नी की विवाह विषय प्रास्थिति का अवधारण करने वाले पूर्व विनिश्चय से असंगत है या वह विनिश्चय या तो उस राज्य में दिया गया था, जिसमें मान्यता की मांग की गई है या मान्यता दी गई है या वह मान्यता के लिए अपेक्षित शर्तें पूरी करता है। पूर्व विनिश्चय से असंगति।

9.13 आर्टिकल 10 के अधीन, संविदाकारी राज्य विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता देने से इन्कार कर सकते हैं, यदि ऐसी मान्यता उनकी लोकनीति (लोकादेश) से स्पष्टत: असंगत है। लोक नीति।

9.14 आर्टिकल 11 में यह उपबन्ध किया गया है कि वह राज्य, जो कि इस कन्वेंशन के अधीन विवाह-विच्छेद को मान्यता देने के लिए बाध्य है, पति या पत्नी में से किसी को भी पुनर्विवाह करने से इस आधार पर नहीं रोक सकता है कि दूसरे राज्यों की विधि उस विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं देती है। पुनर्विवाह।

कार्यवाहियों का निलम्बन ।

9.15 आर्टिकल 12 के अधीन, किसी संविदाकारी राज्य में विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के लिए कार्यवाहियां उस समय निलम्बित की जा सकती हैं, जब विवाह के किसी पक्षकार की विवाह विषयक प्रास्थिति से सम्बन्धित कार्यवाहियां किसी अन्य संविदाकारी राज्य में लम्बित हों।

अन्य उपबन्ध ।

9.16 आर्टिकल 13 से 16 तक, लागू विधि पद्धति का अभिनिश्चय करने के लिए कतिपय सुसंगत मामलों के बारे में उपबन्ध करते हैं। आर्टिकल 17 मान्यता के अधिक अनुकूल नियमों की व्यावृत्ति करता है।

आर्टिकल 18 से 31 तक में कतिपय प्रकीर्ण मामलों की, जिनके अन्तर्गत आरक्षण, कन्वेंशन में शामिल होना, निर्वचन और इसी प्रकार के अन्य मामले हैं, चर्चा की गई है।

अध्याय 10

मान्यता के बारे में 1971 का इंग्लैंड का ऐक्ट

I. प्रारम्भिक

10.1 इस अध्याय में, हम मान्यता[1] के विषय पर हाल ही के इंग्लैंड के ऐक्ट के महत्वपूर्ण उपबन्धों का सार प्रस्तुत करेंगे । हम प्रारम्भ में ही यह स्पष्ट कर दें कि हम मान्यता के आधारों से सुसंगत महत्वपूर्ण उपबन्धों पर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे और विभिन्न तफसील के विषयों की चर्चा नहीं करेंगे । हम यह भी स्पष्ट कर दें कि इंग्लैंड के ऐक्ट में, विदेशी डिक्रियों की मान्यता के बारे में चर्चा की जाने के अतिरिक्त, ब्रिटिश द्वीपसमूह[2] में डिक्रियों की मान्यता के बारे में भी उपबन्ध हैं, किन्तु हम ऐसी डिक्रियों से सम्बन्धित उपबन्धों के प्रति निर्देश नहीं करेंगे क्योंकि वे हमारे प्रयोजन के लिए किसी महत्व के नहीं हैं । प्रारम्भिक ।

II. मुख्य उपबंध

10.2 विदेशी विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की विधिमान्यता को ग्रेट ब्रिटेन में मान्यता दी जाने की बाबत प्रथम उपबन्ध ऐक्ट की धारा 2 में अन्तर्विष्ट है, जो कि यह उपबन्ध करती है कि ऐक्ट की धारा 3 से 5, धारा 8 के अध्यधीन रहते हुए, ऐसे विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों के बारे में प्रभावी होंगी, जो कि— मान्यता के बारे में इंग्लैंड के ऐक्ट में साधारण उपबन्ध ।

(क) ब्रिटिश द्वीपसमूह से बाहर किसी देश में न्यायिक या अन्य कार्यवाहियों द्वारा अभिप्राप्त किए गए हैं; और

(ख) उस देश की विधि के अधीन प्रभावी हैं ।

10.3 धारा 3(1) के अधीन, विदेशी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की विधिमान्यता स्वीकार की जाएगी, यदि उस देश में जिसमें वह अभिप्राप्त किया गया था, कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को— धारा 3(1)—मान्यता के लिए आधारों के बारे में मुख्य रूप से धारा 3 में चर्चा की गई है ।

"(क) पति या पत्नी में से कोई उस देश में अभ्यासतः निवासी था; या

(ख) पति या पत्नी में से कोई उस देश का राष्ट्रिक था ।"

इस पर ध्यान दिया जाए कि यह उपधारा अधिवास के बारे में उपबन्ध नहीं करती है । उसके बारे में पृथकतः[3] चर्चा की गई है । यह भी उल्लेखनीय है कि पति या पत्नी में से किसी का भी आभ्यासिक निवास या राष्ट्रिकता उस विदेशी न्यायालय को सक्षमता प्रदान करने के लिए पर्याप्त है, जिसकी डिक्री अब मान्यता का विषय है । यह उस इंग्लैंड के उस रूढ़िगत नियम से अत्यधिक महत्वपूर्ण विचलन है, जिसके अधीन, कतिपय परिवर्धनों या विशेषज्ञों के अध्यधीन रहते हुए, दोनों पक्षकारों के अधिवास की कसौटी विदेशी डिक्रियों[4] की मान्यता के लिए कसौटी है ।

10.4 इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि 1971 के ऐक्ट की धारा 3(2) यह उपबन्ध करती है कि किसी ऐसे देश के सम्बन्ध में, जिसकी विधि अधिवास की धारणा का, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के मामलों में (देशीय) अधिकारिता के आधार के रूप में उपयोग करती है । धारा 3 की उपधारा (1)(क) अर्थात् यह कसौटी कि पति या पत्नी में से कोई भी विदेश[5] में अवश्य ही अभ्यासतः निवासी होना चाहिए 1971 के ऐक्ट की धारा 3(2) ।

1. दि रिकोगनीशन आफ फारेन डाइवोर्सेज एण्ड लीगल सेप्रेशन ऐक्ट, 1971 (अध्याय 63) ।
2. उदाहरण के लिए इंग्लैंड के ऐक्ट, 1971 की धारा 1 ।
3. आगे का पैरा 10.4 और 10.10—धारा 3(2) ।
4. ऊपर अध्याय 7 ।
5. ऊपर पैरा 10.3 ।

ऐसे प्रभावी होगी मानो आभ्यासिक निवास के प्रति निर्देश में, उस विधि के अर्थान्तर्गत "अधिवास" के प्रति निर्देश भी है । मोटे तौर पर इस उपबन्ध का प्रभाव यह है कि यदि विदेश स्वयं अधिवास की कसौटी को, अपने आन्तरिक प्रयोजनों के लिए विवाह-विच्छेदों को मंजूर करने में अधिकारिता की कसौटी के रूप में अपना लेता है, तो उस विदेश के न्यायालय की डिक्री को--ऐसा विदेश होने के कारण, जिसमें पति या पत्नी में से कोई कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को अधिवसित था—इंग्लैंड में मान्यता दी जाएगी । यह स्पष्ट है कि भागतः--यह उपधारा अधिवास के आधार पर मान्यता के बारे में इंग्लैंड के कामन लॉ के नियम का परिरक्षण करती है, किन्तु भागतः यह उस नियम में उपान्तरण कर देती है, क्योंकि इसके लिए यही पर्याप्त है कि पति या पत्नी में से कोई विदेश में अधिवसित था । यह आवश्यक नहीं है कि दोनों[1] इसी प्रकार विदेश में अधिवसित होने चाहिएं ।

1971 के ऐक्ट की धारा 3(3), विभिन्न राज्यक्षेत्रों का समाविष्ट करने वाला देश।

10.5 इस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि मान्यता के लिए आधारों से सम्बन्धित इंग्लैंड के ऐक्ट के उपबन्ध, जो कि अब तक संक्षेप में उल्लिखित किए गए हैं, "उस देश" के बारे में, जिसमें डिक्री अभिप्राप्त की गई थी और उस देश की "विधि" के बारे में उपबन्ध करते हैं । अब, जैसा कि सुविज्ञात है, ऐसे भी देश हैं जहां संघीय संरचना होने के कारण देश के भागरूप विभिन्न प्रदेश विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के मामलों में विभिन्न विधि पद्धतियों द्वारा शासित होते हैं ।

ऐसे देशों के लिए उपबन्ध किए जाने होते हैं और 1971 के ऐक्ट की धारा 3(3) यह उपबन्ध करती है कि "प्रदेशों को समाविष्ट करने वाले ऐसे देश के सम्बन्ध में, जिसमें विभिन्न पद्धतियां विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण के मामलों में प्रवृत्त हैं, (राष्ट्रिकता से सम्बन्धित उपबन्धों को छोड़कर) इस धारा के पूर्वगामी उपबन्ध ऐसे प्रभावी होंगे मानो ऐसा प्रदेश पृथक् देश हो ।

1971 के ऐक्ट की धारा 4--
(i) प्रतिकार्यवाहियां; और
(ii) विवाह-विच्छेद में संपरिवर्तित विधिक पृथक्करण ।

10.6 1971 के ऐक्ट की धारा 4 में दो उपबन्ध हैं। उपधारा (1) यह उपबन्ध करती है कि जहां प्रतिकार्यवाहियां हुई हैं वहां यदि धारा 3(1) (क) और (ख) में उल्लिखित अधिकारिता सम्बन्धी कसौटियों की या तो मूल कार्यवाहियों की बाबत या प्रतिकार्यवाहियों की बाबत पूर्ति हो जाती है, तो यह पर्याप्त होगा तथा यह बात महत्वहीन है कि दोनों में से किसकी वजह से विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की डिक्री दी गई थी । यह उपधारा की प्रमित भाषा नहीं है किन्तु यह सार है जो कि सरल शब्दों में बताया गया है ।

एक काल्पनिक मामला लिया जा सकता है कि यदि (i) पत्नी विवाह-विच्छेद के लिए उस अधिकारिता में आवेदन करती है जहां वह अभ्यासतः निवासी थी, और (ii) बाद में, पति, जो कि न तो उस देश का निवासी है, न उस देश का राष्ट्रिक है, न उस देश में अधिवसित है, विवाह-विच्छेद के लिए प्रतिकार्यवाहियां करता है, और (iii) पत्नी उस देश में आभ्यासिक रूप से निवासी नहीं रह जाती है तो पति के पक्ष में डिक्री को, यदि अन्ततोगत्वा वह पारित कर दी जाती है इंग्लैंड में, धारा 4(1) के आधार पर फिर भी मान्यता दी जाएगी । यह तथ्य कि पत्नी अपनी अर्जी प्रस्तुत करने के समय अभ्यासतः निवासी थी, पति की कार्यवाहियों पर पारित डिक्री को विधिमान्य बनाती है, भले ही पति की कार्यवाही के लिए अधिकारिता सम्बन्धी कसौटी का इस मामले में समाधान नहीं होता है ।

धारा 4(2) यह अधिनियमित करती है कि जहां विधिक पृथक्करण, जिसकी विधिमान्यता धारा 3 या धारा 4(1) के आधार पर स्वीकृत की जाने की हकदार है, उस देश में, जिसमें वह अभिप्राप्त किया गया था, विवाह-विच्छेद में संपरिवर्तित कर दिया जाता है, वहां विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता को स्वीकृत किया जाएगा, चाहे वह विवाह-विच्छेद स्वयं उन उपबन्धों के आधार पर मान्यता पाने का हकदार हो या नहीं ।

सरल भाषा में, यह उपधारा यह उपबन्ध करती है कि ऐसे मामलों में धारा 3 में अधिकथित अधिकारिता सम्बन्धी कसौटी का, विदेश में विधिक पृथक्करण के लिए कार्यवाहियों के संस्थित किए जाने की तारीख को भी, समाधान किए जाने की आवश्यकता नहीं है और यह बात महत्वहीन है कि उस समय जब विधिक पृथक्करण की डिक्री को विवाह-विच्छेद में संपरिवर्तित करने के लिए पश्चात्वर्ती कार्यवाहियां संस्थित की गई हैं, पक्षकार धारा 3 में अधिकथित किसी भी कसौटी का समाधान नहीं करते हैं । यह उपबन्ध उन देशों की डिक्रियों को,

1. ऊपर पैरा 10.3 ।

जिनकी विधिक पद्धतियों के अधीन पृथक्करण विहित कालावधि के अन्त में स्वतः विवाह-विच्छेद में संपरिवर्तित हो सकता है, लागू किए जाने के लिए आशयित हैं। ऐसे देश की बाबत दिया जाने वाला सामान्य उदाहरण डेनमार्क का है और वह बेल्जियम एवम् फ्रांस के भी सम्बन्ध में उपयोगी हो सकता है।

1971 के ऐक्ट की धारा 5—मान्यता से सम्बन्धित तथ्यों का सबूत।

10.7 यह प्रश्न उठ सकता है कि क्या उस तथ्य के निष्कर्ष, जिसके आधार पर विदेशी न्यायालय ने अधिकारिता ग्रहण की थी, उस न्यायालय पर बाध्यकर हैं, जिसमें विदेशी न्यायालय द्वारा पारित विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की डिक्री की मान्यता का प्रश्न उत्पन्न होता है। वास्तव में, ऐसी समस्या संयुक्त राज्य अमरीका में **विलियम** बनाम **नोर्थ केरोलिना**[1] के मामले में उठी थी। उस मामले में यह प्रश्न उठा था कि नेवेड़ा के न्यायालय द्वारा प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री नोर्थ केरोलिना में पूर्ण विश्वास और प्रत्यय पाने की हकदार है या नहीं। विधि के अधीन, जैसी कि वह नोर्थ केरोलिना के न्यायालयों द्वारा लागू की गई थी, डिक्री मान्यता पाने की हकदार थी, यदि वह नेवेड़ा राज्य में अधिवास पर आधारित थी, किन्तु वह प्रश्न जिस पर कि विचार किया जाना था, यह था कि क्या नेवेड़ा न्यायालय के उन तथ्यों के निष्कर्ष, जो अधिवास की कोटि में आते थे, स्वयं नोर्थ केरोलिना के न्यायालय पर आबद्धकर थे या नहीं। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह निश्चायक नहीं था।

पहले संयुक्त राज्य अमेरिका में, साथ वाले राज्य के निर्णयों से सम्बन्धित विषय पर कुछ संभ्रम था। यह संभ्रम **हैडाक** बनाम **हैडाक**[2] के प्रसिद्ध मामले से, जिसने कि अधिकारिता और पूर्ण विश्वास और प्रत्य की बाबत पूर्वतर मामलों की सीमा निर्धारित की थी, प्रारम्भ हुआ था। हैडाक वाले मामले में पति ने अपनी पत्नी को अन्तिम सामान्य अधिवास वाले स्थान पर सदोष अधित्यजन करने के पश्चात्, कनाडा राज्य में अपने नए अधिवास में विवाह-विच्छेद प्राप्त कर लिया था। पत्नी का अधिवास न्यूयार्क में बना रहा था। संयुक्त राज्य अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया कि न्यूयार्क को कनेक्टीकट की डिक्री पर कोई विश्वास करने और प्रत्यय देने की आवश्यकता नहीं है, यद्यपि सुप्रीम कोर्ट ने यह घोषणा नहीं की कि डिक्री शून्य थी। इससे कुछ संभ्रम उत्पन्न हो गया[3]। संभ्रम 1942 तक बना रहा, जब प्रथम विलियम्स वाले मामले[4] में संयुक्त राज्य अमेरिका के सुप्रीम कोर्ट ने स्पष्टतः हैडाक के विनिश्चय को उलट दिया और घोषित किया कि किसी ऐसे राज्य द्वारा प्रदान की गई विवाह-विच्छेद की एकपक्षीय डिक्री, जो कि वाद लाने वाले वादी का अधिवास था, यथोचित विधि प्रक्रिया वाले खण्ड के अधीन न केवल विधिमान्य ही थी, अपितु इस बात की भी हकदार थी कि उसे साथ के राज्यों में पूर्ण विश्वास और प्रत्यय प्रदान किया जाए।

द्वितीय विलियम वाले मामले[5] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सांपार्श्विक जांच यह अवधारण करने के लिए अनुज्ञेय थी कि एकपक्षीय डिक्री प्राप्त करने वाला व्यक्ति उस डिक्री को प्रदान करने वाले राज्य में वास्तव में अधिवसित था या नहीं, किन्तु इस बारे में कुछ विरोधी निर्णय भी थे। इस मामले का साथ वाले राज्य की डिक्रियों से सम्बन्धित मामलों में आस्ट्रेलिया में अनुसरण नहीं किया गया है।

इंग्लैंड का ऐक्ट।

10.8 इंग्लैंड में, ऐसी समस्याओं के बारे में 1971 के ऐक्ट की धारा 5(1) में उपबन्ध किया गया है। उस ऐक्ट की धारा 5(2) यह स्पष्ट कर देती है कि "तथ्य का निष्कर्ष" के अन्तर्गत, इस सन्दर्भ में, आभ्यासिक निवास या अधिवास या राष्ट्रिकता के बारे में निष्कर्ष भी है, धारा 5 इस प्रकार है—

III. मान्यता से सुसंगत तथ्यों का सबूत

5.(2) यह विनिश्चय करने के प्रयोजन के लिए, कि विदेशी विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण इस ऐक्ट के पूर्वगामी उपबन्धों के आधार पर मान्यता दी जाने का हकदार है या नहीं, उन कार्यवाहियों में जिसके द्वारा विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण अभिप्राप्त किया गया था, और जिसके आधार पर उन

1. **विलियम बनाम नोर्थ केरोलिया**, नं० 2 (1945) 325 यू० एस० 226।
2. **हेडाक बनाम हेडाक**, (1906) 201 यू० एस० 562।
3. वाले "हेड़ाक रीविजिटेड़" (1928) 39 हारव० एल० रिव्यू 417।
4. **विलियम बनाम नोर्थ केरोलिना** (1942) 317 यू० एस० 287 यह प्रथम पत्नी से नवादा में विवाह-विच्छेद प्राप्त करने के पश्चात् तात्पर्यित द्वितीय पत्नी के साथ नोर्थ केरोलिना में अवैध सम्भोग के लिए अभियोजन था।
5. **विलियम बनाम नोर्थ केरोलिना** (1945) 325 यू० एस० 226। उसी अभियोजन के नोर्थ केरोलिना ने पाया कि वादी का नवादा में कोई अधिवास नहीं था और दोषसिद्धि बनाए रखी गई थी। **राइस बनाम राइस** (1949) 336, यू० एस० 674 देखिए।

कार्यवाहियों में अधिकारिता ग्रहण की गई थी, (अभिव्यक्त रूप से या विवक्षा द्वारा) दिया गया तथ्य का कोई निष्कर्ष--

(क) यदि पति और पत्नी दोनों ने कार्यवाहियों में भाग लिया था, तो पाए गए तथ्य का निश्चायक साक्ष्य होगा; और

(ख) किसी अन्य मामले में, उस तथ्य का तब तक पर्याप्त सबूत होगा, जब तक तत्प्रतिकूल दर्शित नहीं कर दिया जाता है ।

(2) इस धारा में "तथ्य का निष्कर्ष" के अन्तर्गत यह निष्कर्ष भी है कि पति या पत्नी में से कोई उस देश का, जिसमें विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण अभिप्राप्त किया गया था, अभ्यासतः निवासी या अधिवासी या राष्ट्रिक था; और इस धारा की उपधारा (1) (क) के प्रयोजनों के लिए उस पति या पत्नी के बारे में, जो न्यायिक कार्यवाहियों में हाजिर हुआ/हुई है, यह माना जाएगा कि उसने कार्यवाहियों में भाग लिया है ।"

मिश्रित निष्कर्ष--इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 5(2) ।

10.9 यह सुविदित है कि न्यायालय के निष्कर्षों में बहुधा तथ्य और विधि के मिश्रित प्रश्न अन्तर्वलित होते हैं । यह सुनिश्चित निष्कर्ष कि पति या पत्नी में से कोई एक उस देश का अभ्यासतः निवासी है या उसमें अधिवसित है या उसका राष्ट्रिक है, तथ्य और विधि का मिश्रित निष्कर्ष हो सकता है, जहां तक कि अधिवास, राष्ट्रिकता या अभ्यासतः निवास के व्यक्ति के लिए समारोप में न केवल तथ्यों से अनुमान, अपितु अनेक विभिन्न निष्कर्ष भी अन्तर्वलित हो सकते हैं । 1971 के इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 5(2) का प्रभाव यह होता है कि विदेशी न्यायालय का सम्पूर्ण निष्कर्ष, यथास्थिति, निश्चायक साक्ष्य या पर्याप्त सबूत बन जाता है। इसमें कोई ऐसी आपत्ति नहीं उठाई जा सकती कि अधिवास के बारे में ठीक निष्कर्ष सुनिश्चित तथ्य का निष्कर्ष नहीं था ।

IV. विद्यमान आधार--अधिवास

1971 के ऐक्ट की धारा 6--मान्यता के कतिपय विद्यमान नियमों का प्रवृत्त बना रहना ।

10.10 चूंकि 1971 का ऐक्ट बिना किसी पृष्ठभूमि के पारित नहीं किया गया था, किन्तु मान्यता से सम्बन्धित कामन लॉ के बहुत से नियमों के बनने के पश्चात् और विवाह विषयक अधिकारिता के प्रश्न से सम्बन्धित कतिपय कानूनी उपबन्धों के अधिनियमन के पश्चात् बनाया गया था, अतः इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह यह विनिश्चय करती कि नए ऐक्ट को कहां तक विधि के सर्वतःपूर्ण रूप में माना जाए । इस विषय पर धारा 6 में चर्चा की गई थी, जो कि मूल रूप से अधिनियमित[1] रूप में इस प्रकार थी :--

"6. यह ऐक्ट ऐसे विवाह-विच्छेदों और विधिक पृथक्करणों की विधिमान्यता को मान्यता दी जाने पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना है जो--

(क) विवाह-विच्छेदों या विधिक पृथक्करणों से सम्बन्धित विधि के किसी नियम के आधार पर जो कि पति और पत्नी के अधिवास वाले देश में अभिप्राप्त किए गए हैं या अन्यत्र अभिप्राप्त किए गए हैं तथा उन ब्रिटिश द्वीपों में विधिमान्य रूप में हैं;

(ख) इस ऐक्ट से भिन्न किसी अधिनियमिति के आधार पर,

उस देश के बाहर अभिप्राप्त किए गए हैं किन्तु उपर्युक्त के सिवाय, कोई भी ऐसे विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण ग्रेट ब्रिटेन में इस ऐक्ट में यथा उपबन्धित के सिवाय विधिमान्य रूप में नहीं माना जाएगा ।"

कामन ला पर धारा 6(क) का प्रभाव ।

10.11 इस धारा के खण्ड (क) का प्रभाव मान्यता के उन कामन लॉ नियमों को प्रतिधारित करता है जो कि ऐसे विवाह-विच्छेदों या विधिक पृथक्करणों से सम्बन्धित है और जो--

(i) पति और पत्नी के अधिवास वाले देश में अभिप्राप्त किए गए हैं; या

(ii) कहीं अन्यत्र अभिप्राप्त किए गए हैं, किन्तु उन्हें पति और पत्नी के अधिवास वाले देश में विधिमान्य रूप में मान्यता दी गई है ।

1. 1973 के संशोधन के लिए आगे का पैरा 10.13 देखिए ।

प्रथम स्थिति में, ली मैसूरिये[1] वाले मामले में अधिकथित प्रतिपादना के बारे में कथन किया गया है, जिसके अधीन विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को इंग्लैंड के न्यायालयों द्वारा मान्यता दी जाती है, यदि उसे उस देश के न्यायालय द्वारा मंजूर किया जाता है, जहां पक्षकार अधिवसित हैं।

द्वितीय स्थिति को खण्ड (क) में स्पष्ट किया गया है, जिसे कि **आर्मीटेज बनाम अटर्नी जनरल**[2] वाले नियम के रूप में जाना जाता है, जिसके अधीन विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को इंग्लैंड में मान्यता दी जाएगी, यदि उसे उस देश में विधिमान्य रूप में मान्यता दी गई है, जहां पक्षकार कार्यवाहियों के प्रारम्भ पर अधिवसित थे, भले ही वे उस देश में अधिवसित नहीं हों, जिसके न्यायालय ने डिक्री प्रदान की है।

10.12 मान्यता के इन दो सामान्य विधिक आधारों का परिरक्षण करने के अतिरिक्त, धारा 6 मान्यता के उन आधारों का भी परिरक्षण करती है, जिनके लिए किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा उपबन्ध किया गया है। इस विषय पर, इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट की अधिनियमितियों की गणना करना अनावश्यक है, किन्तु यह उल्लेख करना उपयुक्त होगा कि उनमें[3] से एक—इण्डियन डाइवोर्स (वेलिडिटी) ऐक्ट—में भारतीय न्यायालयों द्वारा मंजूर किए गए विवाह-विच्छेदों के बारे में उपबन्ध किया गया है। यह अधिनियमिति इस लिए पारित की गई थी, क्योंकि भारत के न्यायालय उन ब्रिटेनवासियों के सम्बन्ध में, जो ब्रिटिश भारत में निवासी थे, किन्तु वहां अधिवसित नहीं थे, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 के अधीन विवाह-विच्छेद में अधिकारिता का प्रयोग कर रहे थे। चूंकि प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन वे डिक्रियां विधिमान्य नहीं थीं, अतः इस प्रकार पारित डिक्रियों को इंग्लैंड की पार्लियामेन्ट के ऐक्ट द्वारा विधिमान्यता दी जानी थी। यह भी उल्लेखनीय है कि युद्ध के समय युद्ध विवाहों[4] की बाबत विशेष विधान पारित किया गया था। धारा 6(च)—अन्य अधिनियमितियां।

कुछ कामन ला आधारों और कानूनी आधारों के परिरक्षण के लिए उपबन्ध करने के पश्चात्, धारा 6 अन्तिम वाक्य में मान्यता के सभी अन्य आधारों का उत्सादन करती है। विशिष्टतः **ट्रैवर्स बनाम होली**[5] और **इण्डिका बनाम इण्डिका**[6] में अधिकथित मान्यता के आधार इंग्लैंड में अब विधिमान्य नहीं रह गए हैं क्योंकि धारा 6 का अन्तिम वाक्य विनिर्दिष्ट रूप से यह उपबन्ध करता है कि "किसी ऐसे विवाह-विच्छेद" या विधिक पृथक्करण को, (अर्थात्), ब्रिटिश द्वीपों से बाहर अभिप्राप्त विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को ग्रेट ब्रिटेन में, इस ऐक्ट में उपबन्धित रूप में के सिवाय, विधिमान्य रूप में मान्यता नहीं दी जाएगी।

10.13 1973 की यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेन्ट[7] ने अधिवास और विवाह विषयक कार्यवाहियों से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारे में उपबन्ध करने वाला विधान पारित किया। वर्तमान चर्चा के प्रयोजनों के लिए, यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि (i) 1973 के ऐक्ट की धारा 1 ने साधारण नियम का संशोधन करते हुए, पत्नी को अपना अधिवास अर्जित करने के लिए सशक्त किया, और (ii) अधिवास के बारे में साधारण नियम के इस संशोधन की दृष्टि से 1971 के ऐक्ट की धारा 6 को पुनरीक्षित करना आवश्यक हो गया, जो कि विदेशी विवाह-विच्छेदों की मान्यता से सम्बन्धित था। ये संशोधन पारिणामिक थे और इस द्रुत सर्वेक्षण के दौरान उनके बारे में बताए जाने की आवश्यकता नहीं है। अधिवास से सम्बन्धित 1973 का संशोधन।

10.14 विधि की विभिन्न पद्धतियां विवाह-विच्छेद के पश्चात् पुनर्विवाह के सम्बन्ध में प्रतिषेधों का अधिरोपण करती हैं। ये प्रतिषेध दोनों पक्षकारों पर समान रूप से प्रभाव डाल सकते हैं और केवल एक पक्षकार पर भी प्रभाव डाल सकते हैं। वे सीमित समय के लिए प्रभावी हो सकते हैं या अनिश्चित काल के लिए प्रभावी हो सकते हैं। इस समय हमारा सम्बन्ध सीमित प्रकार के प्रतिषेधों से नहीं है। किन्तु हमारा सम्बन्ध पुनर्विवाह के विरुद्ध ऐसे साधारण प्रतिषेध से है जो कि इस तथ्य से उत्पन्न होता है कि राष्ट्रिकता के देश की विधि के अनुसार कोई विधिमान्य विवाह-विच्छेद नहीं है। यह प्रश्न सामान्यतः वहां उठता है जहां पक्षकारों का विवाह-विच्छेद 'एक्स' देश के न्यायालय द्वारा मंजूर किया गया है और अब पक्षकार 'वाई' देश में पुनर्विवाह करना चाहते हैं, किन्तु उनकी राष्ट्रिकता का देश 'जैड' विवाह-विच्छेद को बिल्कुल भी मान्यता नहीं देता है। 1971 के ऐक्ट की धारा 7—पुनर्विवाह।

1. **ली मसूरिये बनाम ली मसूरिये**, (1895) ए० सी० 517 (पी० सी०)।
2. **आर्मीटेज बनाम अटर्नी जनरल**, (1906) प्रोबेट 135।
3. इण्डियन डाइवोर्स (वेलिडिटी) ऐक्ट, 1921 (इंगलिश)।
4. मैट्रीमोनियल काजेज (वार मैरिजेज) ऐक्ट, 1944 (इंगलिश)।
5. **ट्रैवर्स बनाम होली**, (1953) प्रोबेट 240।
6. **इण्डिका बनाम इण्डिका**, (1969) 1 ऐ० सी० 33 (एच० एल०)।
7. डोमिसाइल एण्ड मैट्रीमोनियल प्रोसीडिंग्स ऐक्ट 1973 (इंगलिश)।

जहां तक 'एक्स' देश का सम्बन्ध है वे अब पति और पत्नी नहीं रहे हैं किन्तु अभी भी वे पुनर्विवाह नहीं कर सकते हैं और उनका पूर्व विवाह उनकी राष्ट्रिकता की विधि के अधीन "जैड" देश में प्रवृत्त माना जाता है, क्योंकि उस विधि के नियमों के अनुसार डिक्री पति और पत्नी दोनों के बीच बन्धन का विघटन नहीं करती है। वास्तव में, ऐसी स्थिति इंग्लैंड के एक मामले[1] में पैदा हुई थी। साधारणतया यह स्थिति वहां भी पैदा होती है जहां राष्ट्रिकता के देश की विधि विवाह-विच्छेद को बिल्कुल भी मान्यता नहीं देती और उस विधि का वर्जन के रूप में अभिवचन किया जाता है।

ऐसी स्थिति का सामना करने के लिए, 1973 में यथा संशोधित 1971 के इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 7 यह उपबन्ध करती है,--

> "7. जहां किसी देश में अभिप्राप्त किए गए विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता इस ऐक्ट की धारा 2 से 5 तक के आधार पर या इस ऐक्ट की धारा 6(5) द्वारा परिरक्षित किसी नियम या अधिनियमिति के आधार पर मान्यता पाने की हकदार है, वह पति या पत्नी में से कोई भी इस आधार पर ग्रेट ब्रिटेन में पुनर्विवाह करने से प्रवारित नहीं किया जाएगा कि विवाह-विच्छेद की विधिमान्यता को किसी अन्य देश में मान्यता नहीं दी जाएगी।"

यह धारा कन्वेंशन का अनुसरण करती है, जिसमें कि सारतः इसी प्रकार[2] का एक आर्टिकल है।

यद्यपि इस धारा के शब्द कुछ अस्पष्ट हैं, किन्तु उसके द्वारा जो आशयित है वह यह है कि तीसरे देश द्वारा विवाह-विच्छेद की अमान्यता पुनर्विवाह के लिए कोई वर्जन नहीं है।

इंग्लैंड के ऐक्ट की धारा 8--मान्यता के अपवाद--विवाह का अस्तित्वयुक्त न होना।

10.15 कतिपय परिस्थितियों में, विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण की डिक्री को मान्यता वांछनीय नहीं होगी। उदाहरण के लिए, मान्यता के सम्बन्ध में अपवाद बनाने की आवश्यकता वहां पड़ सकती है, जहां उस देश की विधि के अनुसार, जिसमें मान्यता की मांग की गई है, पक्षकारों के बीच कोई अस्तित्व-युक्त विवाह नहीं हो। यह स्पष्ट है कि यदि उस देश की विधिक पद्धति के अनुसार, जहां विवाह-विच्छेद की मान्यता की मांग की गई है, कोई पूर्व विद्यमान विवाह नहीं था तो उस देश के न्यायालय ऐसे विवाह के सम्बन्ध में विवाह-विच्छेद को मान्यता नहीं दे सकते हैं, क्योंकि ऐसे मामलों में विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता देना विवाह को अस्पष्ट मान्यता देने के बराबर होगा। ऐसे मामलों में मान्यता का प्रतिषेध करने वाले नियम की बाबत एक अर्थ में, यह माना जा सकेगा कि वह सुस्पष्ट का कथन करता है। एक अर्थ में, किन्तु यह भी उतना ही स्पष्ट है कि जब मान्यता के विषय पर विधि को कानूनी रूप दिया जा रहा है तो यह सुनिश्चित करने के लिए भी उपबन्ध अन्तःस्थापित किया जाना चाहिए कि उस देश के न्यायालय विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मान्यता नहीं देंगे, यदि उस देश की विधि के अधीन--जिसके अन्तर्गत प्राइवेट अन्तर्राष्ट्रीय विधि के ऐसे नियम होंगे, जो उस देश में लागू किए गए हैं कोई विद्यमान विवाह नहीं था।

नैसर्गिक नियम।

10.16 उपर्युक्त स्थिति तकनीकी स्थिति है। किन्तु मान्यता देने से इन्कार करने के लिए अन्य कारण भी हो सकते हैं। इस बारे में एक महत्वपूर्ण प्रवर्ग का गठन ऐसी परिस्थितियों द्वारा किया गया है जो कि दर्शित करती हैं कि विदेशी न्यायालय ने नैसर्गिक न्याय के नियमों के उल्लंघन में विवाह-विच्छेद या विधिक पृथक्करण को मंजूरी दी थी।

लोक नीति।

10.17 अन्त में, ऊपर निर्दिष्ट दोनों स्थितियों में के अलावा किसी देश के न्यायालयों को ऐसे मामलों में मान्यता देने से इन्कार करने की अधिकारिता होनी चाहिए जिनमें विवाह-विच्छेद या पृथक्करण लोक नीति से असंगत है।

तीन स्थितियों के बारे में उपबन्ध किया गया है।

10.18 इंग्लैण्ड के ऐक्ट की धारा 8 में इन तीन स्थितियों के बारे में उपबन्ध किया गया है। यह धारा इस प्रकार है :

1. आर० बनाम ब्रेंटवुड सुप्रिटेंडेंट रजिस्ट्रार ग्राफ मेरिजेज (1968) 3 ग्राल ई० ग्रार० 279 जिस पर 32 माडर्न ला रिव्यू 84 में वेस्टरमैन द्वारा टिप्पणी की गई है।
2. आर्टिकल 11, ऊपर पैरा 9.14।